काम का अधिकार और बेरोजगारी की समस्या

बी टी रणदिवे

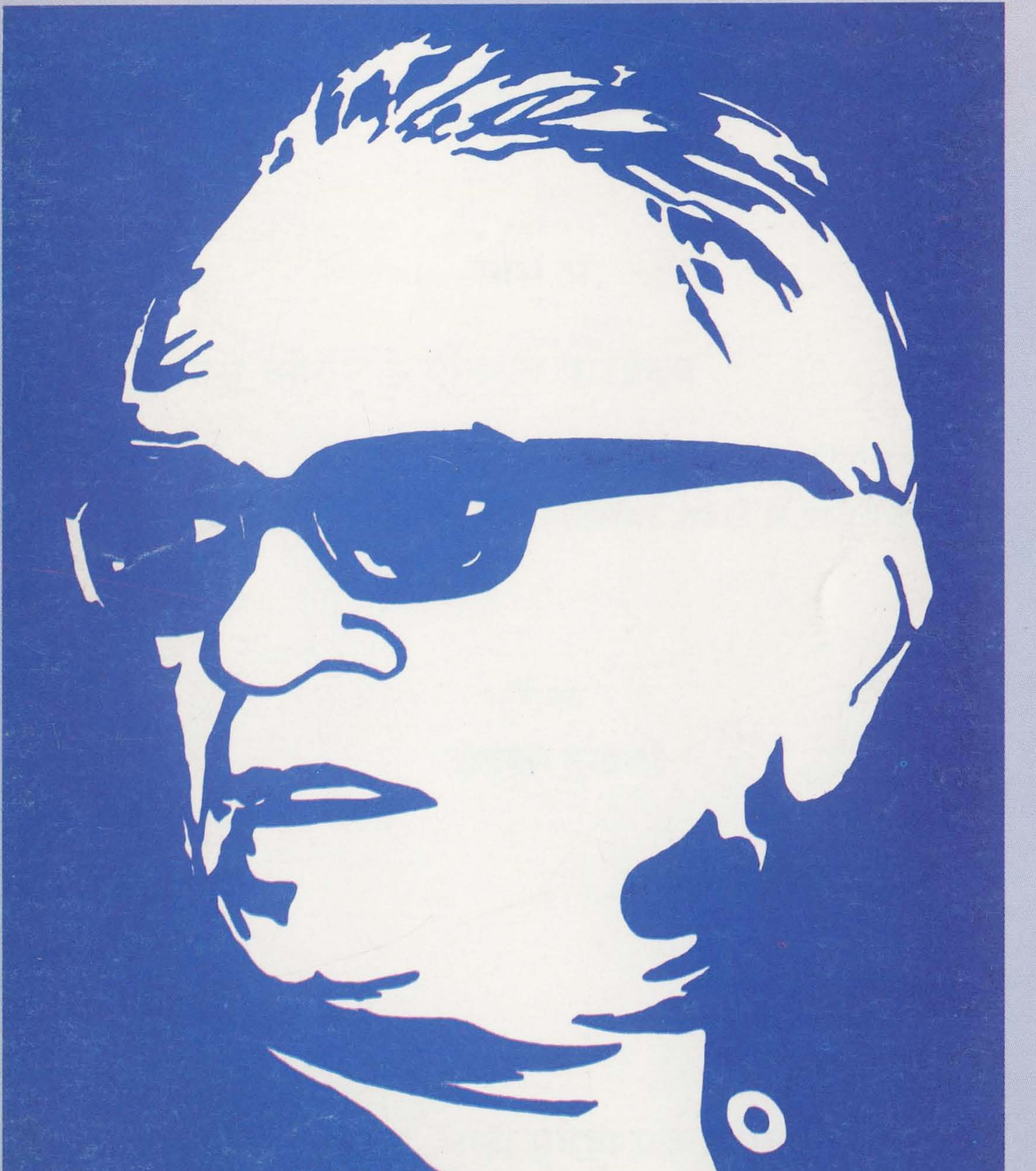

सीटू, मध्य प्रदेश प्रकाशन

●काम का अधिकार और बेरोजगारी की समस्या

●बी टी रणदिवे

साथ में

●बेरोजगारी और ट्रेड यूनियन परिप्रेक्ष्य

(सीटू के 11वें राष्ट्रीय सम्मेलन,
9-13 दिसंबर 2003 में प्रस्तुत दस्तावेज)

भूमिका

दीपंकर मुखर्जी

सीटू, मध्य प्रदेश प्रकाशन
13-बी, पद्मनाभ नगर, भोपाल (मध्य प्रदेश)
फोन: 2757751, फैक्स: 2759532

प्रकाशन वर्षः नवंबर 2004

प्रकाशकः

सीटू मध्य प्रदेश प्रकाशन
13–बी, पद्मनाभ नगर,
न्यू सुभाष कालोनी, भोपाल।
फोनः– 2757751, फैक्सः 2759532

मुद्रकः

दृष्टि ऑफसेट,
महाराणा प्रताप नगर, भोपाल।

मूल्यः पांच

सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियन्स, मध्य प्रदेश राज्य समिति की ओर से **बादल सरोज,**
13–बी, पद्मनाभ नगर, न्यू सुभाष कालोनी भोपाल द्वारा प्रकाशित।

भूमिका

सी आई टी यू ने अपने 11वें राष्ट्रीय महाधिवेशन में अपने संस्थापक अध्यक्ष कामरेड बी टी रणदिवे की जन्म शताब्दी वर्ष को खासतौर से मनाने का आव्हान किया था। बी टी आर इस देश के ट्रेड यूनियन आंदोलन को उसका स्वाभाविक गुण-धर्म देने वाले दिग्दर्शक और आंदोलनकर्ता थे। देश के मजदूर आंदोलन में सी आई टी यू ने अपनी स्थापना के बाद से जो भूमिका निबाही है, जो हैसियत हासिल की है, उसके लिये बी टी आर की शिक्षायें विशेष रूप से जिम्मेदार हैं। उनके शताब्दी वर्ष आयोजनों के दौरान एक प्रमुख काम उनकी शिक्षाओं को, यथासंभव आज के हालात के संदर्भ में अधुनातन करते हुए, समूचे ट्रेड यूनियन आंदोलन की कतारों तक ले जाना है। मध्य प्रदेश राज्य सीटू के द्वारा तीन पुस्तिकाओं का प्रकाशन-जिनमें से एक मौजूदा पुस्तिका है- ऐसी ही एक कोशिश है।

बी टी रणदिवे उन विरले ट्रेड यूनियन नेताओं में से एक थे जो परिणाम के खिलाफ संघर्ष को जारी रखते हुए, उसके कारण के विरुद्ध लड़ाई को भी मजदूर आंदोलन के एजेंडे में शामिल करने पर जोर देते थे। पूंजीवाद-जिसके विरुद्ध संघर्ष के लिये ट्रेड यूनियनें अस्तित्व में आती हैं- के सर्वग्रासी संकट से वे वाकिफ थे तो उसके अंत के लिये सर्वसमावेशी संघर्ष की अपरिहार्यता से भी वे परिचित थे। साधारण शब्दों में कहें तो यह कि मजदूर वर्ग की मुक्ति तभी संभव है जब शोषण के सभी रूपों के शिकार जनगण लड़ाई में उसके साथ जुड़ें। शोषितों की एकता के इस महत्व को समझने की बी टी आर की समझ और उसे जल्द से जल्द हासिल करने की उनकी ललक ने, ट्रेड यूनियन आंदोलन को नई दिशायें दी हैं। बेरोजगारी के प्रति दृष्टिकोण और सक्रियता ऐसा ही एक पहलू है।

इस पुस्तिका में कामरेड बी टी रणदिवे के उस ऐतिहासिक आलेख ***काम का अधिकारः बेरोजगारी की समस्या*** को पुर्नप्रकाशित किया जा रहा है, जो उन्होंने अपनी मृत्यु के ठीक पहले लिखा था। दुर्गापुर में इसी मुद्दे पर हुए राष्ट्रीय कन्वेंशन का यह एक तरह से आधार पत्र था। लगभग डेढ़ दशक पुराने इस लेख के आंकड़ों में मात्रात्मक परिवर्तन ही हुए हैं, गुणात्मक रूप से स्थिति देश दुनियां दोनों जगह, एक सी है। मर्ज वही है तो दवाइयां भी वही रहेंगी। बी टी आर द्वारा निकाले गये उनके बुनियादी निष्कर्ष, सुझाये गये दीर्घकालीन समाधान व अंतरिम उपायों की प्रासंगिकता तब की तुलना में बढ़ी ही है।

सी आई टी यू के 11वें महाधिवेशन में प्रस्तुत **बेरोजगारीः एक ट्रेड यूनियन**

परिप्रेक्ष्य शीर्षक के नीति दस्तावेज ने निजीकरण-उदारीकरण, वैश्वीकरण के दौर के प्रभावों और बेरोजगारों की बढ़ती फौज के उपयोग-दुरुपयोग की संभावनाओं को ठोस रूप में चिन्हांकित किया है। एक तरह से यह दस्तावेज बी टी आर के आलेख को अधुनातन करते हुए उसका विस्तार है।

एक ऐसे वक्त में जब सी आई टी यू ने बेरोजगारी के सवाल पर अपनी पहलकदमी को और बड़े पैमाने पर शुरू करने का काम हाथ में लिया है, जब ट्रेड यूनियनों और वामपंथ के दबाव में रोजगार गारंटी कानून जैसा कुछ बनाने की सैद्धांतिक सहमति केंद्र सरकार को देनी पड़ी है, इस वक्त में मध्य प्रदेश सी आई टी यू का यह प्रकाशन ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं के लिये उपयोगी साबित होगा। बेरोजगारी को उसकी समग्रता के साथ समझने में मददगार होगा।

मुझे विश्वास है कि ट्रेड यूनियन आंदोलन के सभी सक्रिय कार्यकर्ताओं तक इसे पहुंचाने के विशेष प्रयत्न किये जायेंगे- और इसमें लगा श्रम फलदायी होगा।

दीपंकर मुखर्जी
सचिव
सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियन्स

बी टी आर भवन,
13ए, राउज एवैन्यू,
नई दिल्ली-110002

काम का अधिकार और बेरोजगारी समस्या

दुर्गापुर में काम के अधिकार पर सम्मेलन का आयोजन करने के लिए मजदूरों की राष्ट्रीय फैडरेशनें तथा कन्फेडरेशनें बधाई की पात्र हैं और स्टील वर्कर्स फेडरेशन आफ इंडिया के प्रयास भी सराहनीय हैं, जिसने इस मामले में पहल की है।

हालांकि काम का अधिकार पिछले चार दशकों से, संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों में शामिल है, फिर भी बेरोजगारी की समस्या बिगड़ती गयी है और आज भयानक आकार ले चुकी है। इन चार दशकों में न तो कांग्रेस सरकार ने और न ही अल्पजीवी जनता सरकार ने, रोजगार-उन्मुख योजनाओं के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर बोलने के अलावा, बेरोजगारी की वृद्धि को रोकने के लिए कुछ किया। पूंजीवादी रास्ते के नियम को रोका नहीं जा सका और जिंदगी के हरेक क्षेत्र में बेरोजगारी फैलती चली गई।

हमारे देश के ट्रेड यूनियन आंदोलन ने भी मात्र छंटनीग्रस्त मजदूरों तक सीमित औद्योगिक बेरोजगारी का मामला मानकर, इस समस्या को नजरंदाज किया है। इस उपेक्षा के कारण रोजगार और काम के अधिकार का संघर्ष कमजोर हुआ है। इस पृष्ठभूमि में इस सम्मेलन के आयोजन की स्टील वर्कर्स फैडरेशन की पहल सराहनीय है।

रोजगार की सुरक्षा ही नहीं

काम का अधिकार, सिर्फ रोजगार की सुरक्षा नहीं है, बल्कि तमाम जनवादी अधिकारों में एक मौलिक अधिकार है। इस अधिकार की अनुपस्थिति में मताधिकार, अभिव्यक्ति और संगठन की स्वतंत्रता, और जनता की आकांक्षा के अनुरूप सरकार चुनने के अधिकार, अपने आप में मूल्यवान होते हुए भी महज औपचारिक हो जाते हैं। ये अधिकार खुद, मजदूरों की निर्भरता को समाप्त नहीं करते हैं और न ही फैक्टरी, खदान, रेलवे तथा जमीन आदि उत्पादन के साधनों के मालिकों की मनमानी से, आम आदमी की जीविका को मुक्त करते हैं। जब राज्य काम के अधिकार को मान्यता दे दे, तब मेहनतकश अवाम वस्तुतः मुक्त हो जाता है, उसकी दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति ख़त्म हो जाती है, बेरोजगारी का आतंक ज़ाता रहता है और कोई मालिक उसकी जीविका और रोजगार से खेल नहीं सकता है।

सवाल यह है कि इस अधिकार को कैसे सुनिश्चित किया जाय? जवाब है, फैक्टरियों और उत्पादन के साधनों के संबंध में मजदूर वर्ग तथा दूसरे मेहनतकश तबकों को समानता देकर। उत्पादन के तमाम साधनों को निजी मालिकों के नियंत्रण और मिल्कियत से मुक्त करके, उन्हें मुट्ठी भर सरमायेदारों और पूंजीपतियों के

नियंत्रण से हटाकर, सामाजिक आधिपत्य के तहत लाकर ही यह सुनिश्चित किया जा सकता है। इसको कारगर बनाने के लिए, जनता का राजनीतिक सत्ता पर अधिकार अनिवार्य है, मजदूर वर्ग के नेतृत्व में मेहनतकश अवाम की सरकार होनी जरूरी है।

पूंजीवाद और काम का अधिकार साथ-साथ नहीं

इसलिए, यह महज संयोग ही नहीं है कि सिर्फ समाजवादी देशों केसंविधान ही काम के अधिकार को मौलिक अधिकार का दर्जा देते हैं। अमरीका जैसे सबसे धनी पूंजीवादी राष्ट्रों के संविधान भी मजदूर वर्ग तथा मेहनतकश अवाम को यह अधिकार नहीं देते हैं। इन देशों में उत्पादन के साधनों की मिल्कियत निजी सरमायेदारों के हाथों में है और मजदूर वर्ग के पास उनके कारखानों में काम खोजने के अलावा कोई चारा नहीं है। सरमायेदार ही मालिक हैं और वे ही मुनाफे की अपनी जरूरतों के अनुसार मजदूरों को काम पर लगाते या हटाते हैं। मजदूरों की जीविका और रोजगार, मुनाफे की उनकी हवस के शिकार बनकर रह जाते हैं। पूंजीवाद और काम का अधिकार साथ-साथ नहीं चल सकते।

लेकिन, समाजवादी देशों में निजी सरमायेदार और मालिक नहीं होते हैं। कारखानों, खदानों, रेलवे तथा भूमि पर निजी मालिकों का एकाधिकार नहीं होता है। उन पर पूरे समाज का अधिकार होता है और वे सर्वजन सुखाय होते हैं। समाजवादी समाज इस तरह से आर्थिक योजना बनाता है कि तमाम लोगों को काम मिले। यह पूंजीवादी तंत्र पर समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठता का प्रमाण है। इसे याद रखना जरूरी है। क्योंकि आज हमारे देश में तथा दूसरी जगहों पर भी जबर्दस्त प्रचार अभियान चलाया जा रहा है कि समाजवाद असफल हो गया है और पूंजीवाद ने समाजवाद पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर दी है।

इन तमाम सवालों में जहां समाजवादी देशों में कोई बेरोजगारी नहीं रही, आर्थिक संकट नहीं आये, वहीं पूंजीवादी राष्ट्रों का क्या रिकार्ड रहा है ? आज इन देशों में तीन करोड़ से ज्यादा बेरोजगार हैं और बेरोजगारी की दर हरेक तकनीकी विकास के साथ बढ़ रही है। सिर्फ अमरीका में ही 1985 में 83 लाख बेरोजगार थे, जापान में 15 लाख, फ्रांस में 23 लाख, जर्मनी (संघीय जर्मन गणराज्य) में 23 लाख, इटली में 24 लाख और इंग्लैंड में 32 लाख बेरोजगार थे। 1979 और 1985 के बीच इंग्लैंड में बेरोजगारी दोगुनी हुई है, जर्मनी में तीन गुना और अमरीका में 25 फीसदी बढ़ी है।

पूंजीवाद में बेरोजगारी बढ़ती ही है

ऐसा क्यों होता है ? पूंजीवादी समाज का नियम है कि बेरोजगारी बढ़ेगी ही और पूंजीपतियों के पास औद्योगिक सुरक्षित सेना हो, यह जरूरी है, ताकि जब श्रम की ज्यादा जरूरत पड़े, तब भी मजदूरी को कम रखा जा सके। पूंजीवादी समाज के इस नियम का क्या अर्थ है ? निजी सरमायेदारों के उत्पादन का उद्देश्य सामाजिक लाभ

नहीं, बल्कि आमदनी बढ़ाना होता है। नयी मशीनें लगाकर, उत्पादन की कीमत को घटाकर बाजार पर कब्जा करने के लिये वे एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं। उत्पादन की कीमत घटाने का मतलब होता है प्रभावी मशीनें लगाकर मजदूरों की संख्या घटाना, इस प्रतिस्पर्धा में सभी सरमायेदार श्रम की बचत कर, कम मजदूर लगाकर, अपने प्रतिद्वंदी पर बढ़त हासिल करते हैं। इस प्रक्रिया का नतीजा बढ़ती बेरोजगारी के रूप में सामने आता है। मजदूरों को घटाने की इस प्रतिस्पर्धा के बिना पूंजीवादी समाज जिंदा नहीं रह सकता है।

भारत एक पूर्ण विकसित पूंजीवादी देश नहीं है। भारत ने अपेक्षाकृत हाल में ही पूंजीवादी रास्ते को अपनाया है। पर, यहां भी, जहां तक आधुनिक उद्योगों का सवाल है, पूंजीवादी संचय के साथ, पूंजीवादी उद्योग के विकास के साथ-साथ बेरोजगारी भी बढ़ने का नियम लागू रहा है। यह प्रक्रिया हम अभी से ही नगरों तथा औद्योगिक शहरों में देख सकते हैं। आंकड़े बताते हैं कि कभी-कभी तो 8 से 9 फीसद तक औद्योगिक विकास दर के बावजूद बेरोजगारों की संख्या बढ़ती गयी है। हर योजना के साथ बेरोजगार बढ़ते ही चले गए हैं।

रोजगार कार्यालयों में दर्ज शहरी बेरोजगारी

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंत में	53 लाख
द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंत में	71 लाख
तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंत में	96 लाख
चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंत में	1 करोड़ 71 लाख
पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अंत में	2 करोड़ 21 लाख
छठी पंचवर्षीय योजना के अंत में	2 करोड़ 49 लाख
30 जून 1989 को	3 करोड़ 10 लाख

स्रोतः 1- लोकसभा का जवाब... 4 सितंबर 1981
2- इंडियन लेबर जर्नल, अक्टूबर 89
3- श्रम मंत्रालय, डी जी ई टी, एस- 1302517/1988-89

बड़े और छोटे उद्योगों के बीच की प्रतिस्पर्धा, छोटे उद्योगों के लिए जानलेवा होती है और उनमें लगे हजारों मजदूर बेकार हो जाते हैं, जिनमें से एक अंश ही बड़े या नये उद्योगों में खप पाता है। बड़े उद्योगों के बीच, ज्यादा मुनाफा कमाने की प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप नयी तकनीक और मशीनें लगायी जाती हैं, जो पूंजी तो काफी मांगती हैं, पर मजदूर कम से कम। इन्हें पूंजी-सघन उद्योग कहा जाता है, जिन्हें चलाने के लिये थोड़े से ही मजदूरों की जरूरत होती है।

पूंजीवादी उत्पादन की अराजकता

इसके अलावा, पूंजीवादी उत्पादन की अपनी अराजकता होती है। मुनाफे के

लिए कई सरमायेदार नये-नये उद्योग खोलते हैं, लेकिन शीघ्र ही उन्हें पता चलता है कि वे बाजार की मांग से ज्यादा उत्पादन कर रहे हैं। वे लाभकारी दरों पर अपने उत्पाद बेचने में असफल हो जाते हैं। मिल बंद कर देते हैं, तालाबंदी की घोषणा कर हजारों मजदूरों को सड़कों पर फेंक देते हैं। इसके अलावा, देश की पूंजीवादी-भूस्वामी सरकार की आर्थिक नीतियां लोगों की क्रय शक्ति घटा देती हैं, जिससे जीवन की जरूरत की चीजें खरीदने की उनकी क्षमता कम हो जाती है और फलत: मिल बंदियों के चलते और मजदूर बेकार हो जाते हैं। भारत का सूती कपड़ा उद्योग, जनता की गरीबी और उसकी क्रय शक्ति की गिरावट से फैलती मिलबंदियों का ज्वलंत उदाहरण है। पिछले कुछ अर्से में होती रही मूल्य वृद्धि से कामकाजी लोगों की वास्तविक मजदूरी में ह्रास हुआ है, जिससे वे बाजार से अपनी जरूरत की चीजें खरीदने में असमर्थ होते गए हैं। परिणाम यह है कि जहां ग्रामीण भारत का एक तिहाई हिस्सा वस्त्रहीन है, सूती मिलें मांग की कमी की वजह से बंद या बीमार हो गयी हैं और हजारों और मजदूर बेरोजगार हो गए हैं। पिछले कुछ सालों में करीब 2 लाख बड़े-छोटे उद्योग बंद हुए हैं, जिससे लाखों मजदूर बेकार हो गए हैं। सरकार के अनुसार इनमें से सिर्फ 20 फीसद पुनर्जीवित किए जा सकते हैं। बेरोजगारों का कुछ भी हो उनकी बला से! ये प्रतिष्ठान, नए तथा बड़े उद्योगों की प्रतिस्पर्धा की वजह से या अवाम के एक बड़े तबके की क्रय शक्ति में गिरावट के कारण बंद हुए हैं, जबकि एक पिछड़े देश में पूंजीवादी विकास के साथ ये बीमारियां अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई हैं।

पूंजीवादी संचय और बेकारी का उपहार

आम तौर पर देश में बेरोजगारी की स्थिति पर विचार करते हुए ट्रेड यूनियनें सिर्फ उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न बेरोजगारी पर ही ध्यान देती हैं। वे, उन मजदूरों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करती हैं, जो पहले कभी काम पर थे, पर काम खो चुके हैं। लेकिन, यही बेरोजगारी के अकेले स्रोत नहीं हैं। औद्योगिक क्षेत्र के कारणों के अलावा दो और बड़े कारक कहीं ज्यादा बेरोजगारी पैदा करते हैं। विकसित पूंजीवादी देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं को बहुत पहले ही पूंजी के नियंत्रण में ले आये थे। लेकिन, भारत जैसे पिछड़े देश में अर्थव्यवस्था पर पूंजी के पूर्ण प्रभुत्व की प्रक्रिया आज भी जारी है। पूंजीवाद के आरंभ में आज के विकसित देशों को एक लंबे समय तक इसी प्रक्रिया से गुजरना पड़ा था। भारत में लाखों लोग पूर्व-पूंजीवादी उद्योगों, हथकरघा और छोटे उद्योगों में लगे हैं। हैंडलूम, नारियल जटा, काजू और तरह-तरह के कुटीर उद्योग अब नष्ट हो रहे हैं और लाखों मजदूर बेकार हो रहे हैं।

यह प्रक्रिया अंग्रेजों के आगमनकाल से ही शुरू होकर आज भी चल रही है और पारंपरिक उद्योगों में लगे लोगों पर लगातार मुफलिसी की जिंदगी थोप रही है। कृषि क्षेत्र में भी यही प्रक्रिया चल रही है और छोटा किसान अपनी जमीन और उत्पादन

के साधनों से जबरन वंचित किया जा रहा है। पूंजीवादी विकास का यह तकाजा होता है कि आम लोग उत्पादन के साधनों से वंचित हों, ताकि पूंजीवादी विकास के लिये सस्ते श्रम और इसके उत्पादों के लिए बढ़ता बाजार मिल सके। भारत में कई भूमि सुधार प्रयासों तथा एक हद तक भूमि वितरण के बावजूद बड़े पैमाने पर किसानों को अपनी जमीनें छोड़नी पड़ीं हैं- उन्हें खेतमजदूर, औद्योगिक मजदूर या बंधुआ मजदूर बनना पड़ा है। भारत में भूमि का अति केन्द्रीकरण बड़े पैमाने पर किसानों को जमीन आदि से बेदखल किए बगैर नहीं हो गया है। मार्क्स ने उत्पादकों के, उत्पादन साधनों से अलग होने की इस प्रक्रिया को, प्राथमिक संचय की प्रक्रिया कहा था।

पूंजीवादी विकास की जरूरतों ने, शहरों तथा विस्थापित लोगों के लिए अधिक खाद्य-उत्पादन की जरूरत ने, सिंचाई तथा नयी भूमि को कृषि योग्य बनाने के उद्देश्य से विशाल बांधों के निर्माण की प्रक्रिया को तेज किया है। लेकिन, इससे आदिवासियों तथा लाखों दूसरे लोगों को अपनी जमीन से वंचित होना पड़ा है और उनकी जमीनें पानी में डूबी पड़ी हैं। ये लोग बिना किसी मुआवजे तथा पुनर्वास के बस बेघर कर दिए गए हैं, जिनकी नियति बेरोजगारी तथा भुखमरी है। मार्क्स ने कितना सच कहा था: "पूंजी सिर से पांव तक खून से तरबतर, रक्त तथा गंदगी से लिथड़कर इस दुनिया में आती है"। (पूंजी, खंड-1, पृ. 712)।

पूंजीवादी विकास के लिए जरूरी संचार और यातायात के साधन भी ग्रामीण रोजगार के लिए भयानक तबाही का सामान बनकर आते हैं और कोई विकल्प नहीं देते। मिसाल के तौर पर, लारी व ट्रक यातायात के विकास ने लाखों बैलगाड़ीवानों से उनकी जीविका छीन ली, जो गांवों से नगरों तक माल ढोते थे। इसी तरह सिंचाई के लिए बिजली के पंपों के प्रयोग से लाखों बैल मालिक बेकार हो गए हैं, जो पहले बैलों से रहट के जरिए कुएं से पानी निकलवाने का काम लेते थे। पूंजीवादी व्यवस्था के इस अपरिहार्य विकासक्रम ने ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारों की एक विशाल फौज खड़ी कर दी है, जिसकी संख्या शहरी बेरोजगारों से कई गुना ज्यादा है।

बेरोजगारी ऐसे खत्म नहीं होगी

इस तरह से कुल मिलाकर समस्या बहुत ही गहन है, जिसे तब तक सुलझाना संभव नहीं और तब तक काम के अधिकार को सुनिश्चित करना भी संभव नहीं है, जब तक कि बेकारी की इस प्रक्रिया पर अंकुश नहीं लगाया जाता है और भिन्न ढंग की वैकल्पिक सामाजिक आर्थिक व्यवस्था की स्थापना नहीं हो जाती है। ऐसी व्यवस्था का आधार उत्पादन साधनों का समाजीकरण और समाजवादी समाज ही हो सकता है। ऐसी व्यवस्था में आधुनिक उद्योग के विकास की गति तीव्र होगी तथा नये उद्योगों द्वारा विस्थापित सभी लोगों को रोजगार में खपाया जा सकेगा। पूंजीवादी हालात में औद्योगिक विकास की गति काफी धीमी होती है और इससे जितने लोग

नए रोजगारों में खपते हैं, उनकी संख्या विस्थापित होने वालों से काफी कम होती है।

वर्तमान समाज में बेरोजगारी का एक और स्रोत है, श्रम बाजार के सभी नये प्रवेशार्थियों को रोजगार देने में मौजूदा व्यवस्था की अक्षमता। मजदूर वर्ग, मध्यमवर्ग या कृषक परिवार से आये युवा, जो उत्पादक उत्साह से युक्त हैं, जो समाज की अपनी तमाम क्षमता लगाकर सेवा करना चाहते हैं, उनसे कहा जाता है कि समाज को उनकी जरूरत ही नहीं है और उनकी श्रम क्षमता नष्ट हो जाती है। निजी पूंजी की रोजगार देने की क्षमता दिनों दिन घटती जा रही है। सेवा उद्योगों, बैंकिंग, इंश्योरेंस तथा दूसरे सेवा क्षेत्रों में कंप्यूटर लगाने तथा उद्योगों में स्वचालन, को बढ़ावा देने से भविष्य में रोजगार की क्षमता घटती जा रही है। कुछ मामलों में पहले से काम पर लगे लोगों को भी निकाला जा रहा है। ये तमाम कारण स्पष्ट कर देते हैं कि आने वाले दिनों में बेरोजगारी की समस्या और बिगड़ने वाली है और पहले से काम पर लगे लोगों के रोजगार की असुरक्षा बढ़ती जायेगी।

यह समस्या का विकराल दानवी स्वरूप है। यह समस्या तब तक बनी रहेगी, जब तक कि इनके कारणों पर रोक नहीं लगायी जाती है और बेरोजगारी खत्म करने का, जीविकोपार्जन के लिये सरमायेदारों पर जनता की निर्भरता समाप्त करने का, काम को संविधान के अंतर्गत मौलिक अधिकार मानने के सिवा कोई और उपाय नहीं है। जब तक लोग काम का मौलिक अधिकार नहीं पा लेते, दूसरे मौलिक अधिकार रस्मी ही बने रहेंगे।

अत्यावश्यक वर्गीय जिम्मेदारी

इसलिए, बेरोजगार या बारोजगार, सभी मजदूरों, गरीब ग्रामीण जनता के लिए जरूरी है कि वे एकजुट हों, काम के अधिकार के लिए जारी संघर्ष में अपनी लाखों की ताकत को गोलबंद करें। इस अधिकार की प्राप्ति का मतलब है मुट्ठी भर पूंजीपतियों की दासता से जनता की वास्तविक मुक्ति। और, पहली बार वे तथा उनके परिवार, स्वतंत्र माहौल में रह सकेंगे, जहां उनके काम से कोई उन्हें वंचित नहीं कर सकेगा।

काम के अधिकार का प्रचार करते हुए, समस्त मजदूर वर्ग, बेरोजगारों तथा ग्रामीण अवाम को वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में, संपत्ति संबंधों में परिवर्तन की मांग करनी चाहिए, जिसके बिना काम के अधिकार के लिए जरूरी द्वार नहीं खोले जा सकते हैं। जब तक वर्तमान भूमि एकाधिकार चलता रहेगा और जब तक भूमि संबंधों में आमूलचूल परिवर्तन लाकर भूमिहीनों को जमीन वितरित नहीं की जाती, काम का अधिकार मिल ही नहीं सकता। इसी तरह, यदि उत्पादन के साधनों को चंद सरमायेदारों के कब्जे में, मजदूरों को काम पर लगाने और हटाने के मनमाने अधिकारों के साथ, छोड़ दिया जाता है, तो काम के अधिकार का क्या मतलब

होगा? मजदूरों की शिरकत से प्रबंधित बढ़ता औद्योगिक राष्ट्रीयकरण और निजी मिल्कियत की समाप्ति, काम के अधिकार को लागू करने की आवश्यक शर्तें हैं। काम के अधिकार के प्रचार के साथ-साथ इनके लिए अभियान छेड़ना निहायत जरूरी है।

इसके साथ-साथ रोजगारों की संख्या बढ़ाने, काम पर लगाने और हटाने के मालिकों के अधिकारों पर अंकुश लगाने और रोजगार के विस्तार तथा बेरोजगारों को राहत की योजना बनाने की फौरी मांगों पर भी लामबंदी जारी रहनी चाहिए।

इन फौरी मांगों तथा काम के अधिकार के लिए अभियान, बारोजगार तथा बेरोजगार मजदूरों, शहरी तथा ग्रामीण मजदूरों का साझा अभियान होना चाहिए। ट्रेड यूनियनों को, जो मजदूरों की संगठित ताकत का प्रतिनिधित्व करती हैं, बेरोजगार मजदूरों, ग्रामीण जनता, युवाओं, विद्यार्थियों तथा महिलाओं को गोलबंद करने में अग्रणी भूमिका अदा करनी चाहिए और उन्हें यह सुनिश्चित करना होगा कि मजदूरों से लेकर मध्यवर्ग तक के तमाम बेरोजगारों को स्थायी तौर पर संगठित करके वृहत्तर आंदोलन छेड़ा जाए। लेकिन, ट्रेड यूनियनों का मौजूदा रुख छंटनी की समस्या से आगे नहीं जाता है। इससे सभी हलकों के तमाम रोजगारखोजी कभी एकत्रित नहीं होंगे। सभी तबकों के युवाओं पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है, क्योंकि वे आंदोलन का सबसे जुझारू तबका हैं। यदि उनकी पहल तथा सामर्थ्य को जगा दिया जाए तो संगठन के कार्य में आश्चर्यजनक उपलब्धियां हासिल होंगी। डी वाय एफ आई और एस एफ आई ने इस दिशा में पहले भी सराहनीय कार्य किया है। कुछ जगहों पर, जैसे केरल में डी वाय एफ आई ने, ट्रेड यूनियनों को पीछे छोड़कर बेरोजगारी के मुद्दे को उठाने में पहल की है।

राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों के लिए जवाहर योजना और शहरी क्षेत्रों के लिए संशोधित नेहरू रोजगार योजना को लागू करने के लिए स्वीकृति दी है। इन योजनाओं का पूरा-पूरा फायदा उठाने की जरूरत है। लेकिन, ऐसा तभी संभव होगा, जब मूलगामी भूमि सुधार किए जाएं, वरना इसका लाभ निहित स्वार्थ उठा ले जायेंगे। जब तक कि ग्रामीण इलाकों में निहित स्वार्थों की शक्ति नहीं कुचली जाती है, महज विकेन्द्रीकरण या पंचायतों की शिरकत से ज्यादा कुछ होने वाला नहीं है।

फौरी मांगों के लिए अभियान

ग्रामीण क्षेत्रों की विपदा को दूर करने के लिए भूमि सुधारों के अलावा नयी योजनाएं शुरू करने की जरूरत है।

शहरों में, बंद कारखानों को खोले जाने के प्रयास किए जाएं और जहां पुनर्गठन की जरूरत हो, वहां मजदूरों की सलाह से तथा उनके अनुमोदन से ऐसा किया जाए। सरकारी विभागों और सार्वजनिक क्षेत्र में नयी भरती पर लगी पाबंदी हटा लेनी चाहिए और बढ़ते कार्यभार के अनुपात में कर्मचारियों की संख्या भी बढ़ायी जानी

चाहिए।

आधुनिक प्रतिष्ठानों में अतिरिक्त भर्ती के दृष्टिकोण से, काम के घंटे को घटाने की संभावना पर भी विचार किया जाना चाहिए।

संक्रमणकाल में, परंपरागत उद्योगों की रक्षा की जानी चाहिए, जो आज तबाह हो रहे हैं।

सूती कपड़ा तथा जूट उद्योगों का पूर्ण राष्ट्रीयकरण हो, जिससे रोजगार क्षमता बढ़े और उनके उत्पादन का पुनर्गठन किया जा सके।

मजदूरों को काम पर लगाने और हटाने, तालाबंदी घोषित करने के मालिकान के अधिकारों पर अंकुश लगाया जाना चाहिए और यह जिम्मेदारी एक सक्षम निकाय को सौंपी जानी चाहिए, जिसमें मजदूरों का प्रतिनिधित्व हो।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश, आयात उदारता तथा नये क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।

रोजगार के मामले में पुरुषों और महिलाओं के बीच सारा मतभेद समाप्त किया जाना चाहिए।

बेरोजगारों की मदद के लिए, निरक्षरता दूर करने का व्यापक अभियान छेड़ा जाना चाहिए। बेरोजगारी राहत के सिद्धांतों को कई राज्यों में स्वीकार कर लिया गया है, इसका विस्तार किया जाना चाहिए। बेरोजगारी के खिलाफ तथा रोजगार की सुरक्षा के लिए संघर्ष एक अखिल भारतीय प्रश्न है, जिसकी प्राथमिक जिम्मेदारी केन्द्र सरकार पर है। इसके लिये जरूरत है अखिल भारतीय समाधान की, उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, बंद मिलों को खोलने और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक रोजगार योजनाएं चलाने के लिए अखिल भारतीय विधान बनाने की। इसके लिए आर्थिक ढांचे में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने की भी जरूरत है, जिसे भी केन्द्र सरकार ही संपन्न कर सकती है। इन समस्याओं को टुकड़ों में राज्य हल नहीं कर सकते। चूंकि उनके पास न तो इतने आर्थिक संसाधन हैं, न ही मजदूरों की जिंदगी के सिलसिले में प्रबंधनों तथा मालिकों को हासिल असीमित शक्तियों में हस्तक्षेप करने की कानूनी ताकत उनके पास है। यह कुछ संतोष की बात है कि राष्ट्रीय मोर्चा सरकार बेरोजगारी की समस्या के महत्व को समझती है और हम आशा करते हैं कि पिछले कांग्रेस (आई) शासन के विपरीत, यह सरकार बेरोजगारों की विपदा दूर करने के लिए व्यावहारिक कदम उठायेगी और गांवों तथा शहरों दोनों में रोजगार बढ़ाने के लिए व्यावहारिक कार्यक्रम तैयार करेगी।

(बीटीआर ने यह आलेख, अपने जीवन के अंतिम दिनों में लिखा था। 2 व 3 अप्रैल 1990 को दुर्गापुर में हुए "काम के अधिकार" के लिये हुए कन्वेंशन में इसे रखा गया था।)

बेरोजगारीः ट्रेड यूनियन परिप्रेक्ष्य

(सीआईटीयू के ग्यारहवें राष्ट्रीय सम्मेलन,
9-13 दिसंबर 2003 चैन्नई में प्रस्तुत नीति दस्तावेज)

उदारीकरण, भूमण्डलीकरण तथा निजीकरण की अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष-विश्व बैंक निर्देशित आर्थिक नीतियों का गंभीरता दुष्परिणाम लगातार विकराल रूप धारण करती चली जा रही बेरोजगारी की समस्या है। रोजगारहीनता तथा बेरोजगारी की समस्या असाधारण रूप में तेज गति से बिगड़ रही है और नये आयामों को छू रही है। इस अत्यंत गहरे घटनाक्रम में अनेक कारक योगदान दे रहे हैं। पूरे विश्व में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का लगातार संकट ग्रस्त रहना और साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण की सत्ता के अंतर्गत तथाकथित बाजार अर्थव्यवस्था के हमले इसके दो प्रमुख कारकों में शामिल हैं।

बेरोजगारी की समस्या के खिलाफ एक शक्तिशाली संयुक्त जनवादी आंदोलन को विकसित करने के लिये श्रमिक संघों द्वारा की जा रही पहलकदमी ने वर्तमान स्थिति में अत्याधिक महत्व प्राप्त कर लिया है, यह निर्विवाद है। **बी टी रणदिवे** ने एक दशक से भी अधिक समय पूर्व ऐसा करने का आव्हान किया था। उन्होंने कहा था, ''श्रमिक संघों को चाहिए कि वे बढ़ती बेरोजगारी को रोकने के उद्देश्य से सरकार पर दबाव डालने के लिये रोजगार प्राप्त लोगों तथा बेरोजगारों के संयुक्त सम्मेलनों का आयोजन करें, इसके लिये पहलकदमी करें- वे सरकार की आर्थिक नीतियों में बुनियादी तब्दीलियां लाने के उद्देश्य से अग्रणी भूमिका निभाएं और बेरोजगारी रोकने के लिए कार्रवाईयां करें''। 'काम के अधिकार' की मांग के महत्व तथा उसकी सार्थकता को दर्शाते हुए उन्होंने कहा था कि इसे मौलिक अधिकार के रूप में संविधान में शामिल किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा था, काम का अधिकार वास्तव में सभी जनवादी अधिकारों की बुनियाद है, इस अधिकार के बिना अन्य जनवादी अधिकार मात्र औपचारिक एवं दिखावटी अधिकार बन कर रह जाएंगे।

बेरोजगारी की समस्या पर आइ एल ओ का रुख

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन लगातार बेरोजगारी की बद मे बदतर होती चली जा रही स्थिति की ओर ध्यान खींचता रहा है। विश्व रोजगार रिपोर्ट 2001 में रेखांकित किया गया है ''विश्व की एक तिहाई श्रम शक्ति बेरोजगार है अथवा अर्द्ध रोजगार प्राप्त है। रोजगार हीन विकास की विचलित कर देने वाली घटना पर टिप्पणी करते हुए रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि केवल विकास से ही 50 करोड़ से अधिक नये रोजगारों का

सृजन नहीं किया जा सकता जिनकी 2010 तक जरूरत है। श्रम शक्ति की पंक्तियों में नये दाखिल होने वाले लोगों को खपाया जा सके और बेरोजगारी के वर्तमान स्तर को आधा किया जा सके। बढ़ती बेरोजगारी की समस्या से निपटने की हंगामी जरूरत पर बल देते हुए आइ एल ओ की रिपोर्ट में कहा गया है कि "इसके लिये श्रम बाजार के बुनियादी मुद्दों जिनमें मानव पूंजी में निवेश करना पक्षपात दूर करना, तथा रोजगार को आर्थिक नीति का और अधिक केन्द्रीय लक्ष्य बनाना भी शामिल है, की ओर कहीं अधिक ध्यान देने, की आवश्यकता है।"

जिनेवा में, जून 2003 में, संपन्न आइ एल ओ सम्मेलन में पेश की गई अपनी रिपोर्ट में आइ एल ओ के महानिदेशक बेरोजगारी तथा गरीबी के प्रश्न पर अपने विचार व्यक्त करते समय बहुत मुखर थे। उन्होंने कहा था: "शांति एवं सामाजिक न्याय के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट क्या है ? फिलेडेलफिया घोषणा पत्र जिसे 1944 में आइ एल ओ की ओर से जारी किया गया था और जो उसके संविधान के साथ संलग्न है, इसका उत्तर स्पष्ट शब्दों में देता है- गरीबी।"

घोषणा पत्र में कहा गया है: "गरीबी चाहे कहीं भी हो किन्तु वह सभी जगह के खुशहालों के लिये खतरा पैदा करती है।" हमारे समय में तनावों तथा विवादों में जो बढ़ोतरी हुई है वह इस कटु वास्तविकता को पहले से कहीं अधिक जग जाहिर करती हैं तथा यह बात पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बन गई है।

महानिदेशक ने रोजगार सृजन की तत्काल आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था; "हम केवल यही बस अच्छी तरह से जानते हैं कि कामकाजी विश्व के पास ही गरीबी दूर करने की कुंजी है, वही सदा के लिये गरीबी दूर करने के लिये ठोस कार्रवाई कर सकता है और इस दिशा में प्रगति कर सकता है। लोग अपने काम के माध्यम से ही जीवन की बेहतर गुणवत्ता के विकल्पों को अधिक व्यापक बना सकते हैं। काम के द्वारा ही संपत्ति का सृजन, वितरण, गरिमापूर्ण ढंग से दरिद्रता दूर करने की विधियों की तलाश कर सकते हैं।"

बेरोजगारी में बेहतहाशा वृद्धि होने पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए आइ एल ओ ने विचार व्यक्त किया है, "आर्थिक प्रगति की गति मंद होने के दुष्परिणामस्वरूप विश्व की रोजगार स्थिति बद से बदतर हो गई है। आर्थिक बहाली की अनिश्चित संभावनाओं के चलते वर्ष 2003 में रोजगार की संभावनाओं में बदलाव आने की कोई संभावना नहीं है।" आइ एल ओ द्वारा लगाए गए अनुमानों के अनुसार विश्व भर में वर्ष 2002 के अंत तक 18 करोड़ लोग बेरोजगार थे। साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के इस युग में गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की संख्या दुनिया भर में कितनी तेजी के साथ बढ़ रही है, इसका पता इस तथ्य को देखने से चल जाता है कि वर्ष 2002 के अंत तक उन श्रमिकों की संख्या एक बार फिर 55 करोड़ अर्थात 1998 के रिकार्ड स्तर तक पहुंच गई है जो खुद के लिये और अपने परिवारों के अस्तित्व

को बनाए रखने के लिये प्रतिदिन एक अमरीकी डालर से अधिक कमा नहीं पाते।

विश्व व्यापी बेरोजगारी

पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के चालू संकट के गहराते चले जाने के कारण बेरोजगारी की स्थिति बद से बदतर होती है, यह तथ्य बार-बार सिद्ध हो चुका है। अब सभी पूंजीवादी देशों की अर्थव्यवस्थाओं में जबरदस्त ठहराव आ चुका है इसलिये बेरोजगारी की भयानक समस्या ने पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले लिया है। आई एल ओ द्वारा जारी किये गए आंकड़ों के अनुसार औद्योगिक देशों में बेरोजगारी में तीखी वृद्धि हुई है और विश्वव्यापी आर्थिक ठहराव के परिणामस्वरूप बेरोजगारी की दर वर्ष 2000-2002 के बीच 6.9 प्रतिशत तक पहुंच चुकी थी। उत्तरी अमरीका में बेरोजगारी की दर 4.8 प्रतिशत से बढ़कर 5.6 प्रतिशत हो चुकी है। यूरोपीय संघ में बेरोजगारी की दर वर्ष 2002 में बढ़कर 7.6 प्रतिशत हो गई थी। लातिनी अमरीका के लगभग सभी देशों में तथा कैरेबियन देशों में बेरोजगारी की दर में तीखी वृद्धि होते देखी गई जो 2001 तथा 2002 के बीच 10 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में वर्ष 2001 में बेरोजगारी बढ़ कर 6.8 प्रतिशत हो गई, पूर्वी एशिया में 4.0 प्रतिशत तथा दक्षिणी एशिया में 3.4 प्रतिशत हो गई थी। मध्य पूर्व तथा उत्तरी अमरीका में बेरोजगारी की दर वर्ष 2002 में सर्वाधिक अर्थात 18 प्रतिशत थी। सब सहारा अफ्रीका में 14.4 प्रतिशत तथा संक्रमणशील (ट्रांजिशनल) अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी की दर 13.5 प्रतिशत थी। (**कामकाजी दुनिया** 3/2003 तथा **आइ एल ओ**-रोजगार के रुझान-2003)

अमरीकी साम्राज्यवादी जो दूसरों को उपदेश देते हैं तथा दुनिया का दरोगा बने फिर रहे हैं, उन की अपनी धरती में बेरोजगारी के आंकड़े 1950 के दशक से ही नयी ऊंचाईयों को छू चुके थे। वाशिंगटन के एक स्तंभ लेखक के शब्दों में वर्ष 2002 में अमरीका के पे-रोल अर्थात नियमित रूप में वेतन लेने वाले कर्मचारियों की संख्या कम होकर 1,01,000 रह गई थी और बेरोजगारी की दर 6 प्रतिशत पर ठहर चुकी थी। 1950 के दशक के आइजनहावर के शासनकाल के समय से ही रोजगार हीनता की यह स्थिति वर्ष दर वर्ष बनी रही है। देश में वर्ष 2000 तथा 2001 के मध्य 16 लाख रोजगारों की क्षति देखी गई। 1957-58 के बीच भी रोजगार में ऐसी गिरावट देखी गई थी। अमरीका में वर्ष 2002 में रोजगारों की मासिक कटौतियों का अनुपात लगभग 1,40,000 था जबकि 1990-91 में रोजगारों की मासिक कटौतियों का अनुपात 26,000 था।

व्हाइट हाउस के अधिकारी आर्थिक बहाली की मनोहारी धुनों पर भले ही थिरक रहे हों पर वास्तविक स्थिति कुछ और कहानी कहती है। वाशिंगटन पोस्ट के मई 2002 के अंक में जेरी इसाक ने लिखा था, "व्हाइट हाउस के अधिकारियों, मीडिया के विद्वान वक्ताओं तथा विश्लेषकों की ओर से भले ही आर्थिक बहाली की

आधिकारिक घोषणाएं जोर शोर से की जाती रही हों, वे अपने दावे बार-बार दोहराते रहे हों और नि:संदेह निवेशकों को फिर से स्टाक मार्केट में दाखिल हो जाने के लिए समझाने में सफल रहे हों किन्तु वास्तविकता तो यह है कि इस बात के संकेत अधिकाधिक मिलने लगे हैं कि अमरीका की अर्थव्यवस्था में एक बार फिर पूरी तेजी के साथ गिरावट आने लगेगी और उसे रोजगार विहीन बहाली अथवा दोहरी मंदी (डबल डिप) जैसी स्थिति का सामना करना पड़ेगा।"

समाचार पत्रों की ओर से अगस्त 2003 में एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई थी, उसके अनुसार अमरीकी कंपनियों ने 93,000 रोजगारों पर कुल्हाड़ी चला दी है। वाल स्ट्रीट जनरल ने भी तो पहले जोर शोर से यह भविष्यवाणी की थी कि अमरीका में नये रोजगारों के सृजन को जबरदस्त बढ़ावा मिलेगा, उसकी भी हवा निकल गयी है। इसके विपरीत, औद्योगिक घरानों ने पिछले पांच महीनों में अपने यहां रोजगारों में सबसे अधिक कटौती की है, यह कटौती सात महीनों तक बेरोकटोक चली और इसने 5,95,000 रोजगारों की बलि ले ली। (**फायनैंशियल एक्सप्रेस,** 9-9-03)

बुश प्रशासन के अधिकारियों ने अपने अपने ही ढंग से इन रोजगार विहीन आंकड़ों की ओर ध्यान दिया है, उसने खुले दिल से इन बड़े घरानों को करों के भुगतान में और मोहलत दे डाली ताकि वे अर्थ व्यवस्था में स्फूर्ति ला सकें। इससे केवल यही तथ्य रेखांकित होता है कि व्हाइट हाउस के पास इस बद से बदतर होती चली जा रही स्थिति जिसके चलते दसियों लाख लोगों के रोजगारों पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है, को सुधारने का कोई इलाज नहीं। वास्तव में आतंकवाद के खिलाफ तथाकथित युद्ध का केवल एक ही उद्देश्य है- लोगों का ध्यान देश में बिगड़ी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से हटाना।

आर्थिक सुधारों के युग में बेरोजगारी

देश में बेरोजगारी की स्थिति को भयावह बनाने में अनेक कारक अपना योगदान दे रहे हैं, हमारी अर्थव्यवस्था का तेजी से रूपांतरण किया जा रहा है, मैन्युफेक्चरिंग के स्थान पर उसके किवाड़ लाभ के भूखे विदेशी बहुराष्ट्रीय निगमों के लिये खोले जा रहे हैं, हमारा बाजार बहुराष्ट्रीय कंपनियों का गुलाम बन कर रह गया है, ग्रीन फील्ड परियोजनाओं के लिये भारी निवेश नहीं हो रहा जिसके चलते रोजगार के नये अवसर भी सुलभ नहीं हो पा रहे हैं। उद्योगों की बीमारी, कामबंदी और अच्छी स्थिति में चल रहे औद्योगिक उपक्रमों के विलीनीकरण-अधिग्रहण के फलस्वरूप बहुत बड़ी संख्या में श्रमिकों की छंटनी की जा रही है, ग्रामीण क्षेत्रों में पहले की भांति गरीबी बढ़ रही है जिसके कारण भूमिहीन खेतिहर श्रमिकों की संख्या में भारी बढ़ोतरी हुई है।

वर्तमान युग में जारी विनाशकारी आर्थिक सुधारों ने देश में बेरोजगारों की संख्या

बढ़ाने में बहुत भारी योगदान दिया है, यह एक स्थापित सत्य है। सार्थक अध्ययनों से पता चला है कि 1992–94 से लेकर 1999–2000 तक सुधारों की अवधि में देश में बेरोजगारों की संख्या चौंका देने वाली सीमा तक बढ़ चुकी है। बेरोजगारों की संख्या में हुई इस वृद्धि ने पूरे देश को अपनी चपेट में ले रखा है, देश के शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र इसकी विनाशकारी लीला से प्रभावित हुए हैं। उदारीकरण की अवधि में बेरोजगारी से संबंधित आंकड़े देश में बेरोजगारी की बढ़ोतरी तथा उसकी भयानक स्थिति को दर्शाते हैं।

यद्यपि सरकारी अभिकरणों की ओर से प्रकाशित इन आंकड़ों के पीछे कई प्रकार की मंशाएं काम करती हैं, बेरोजगारी का अनुमान बहुत ही कम लगाया जाता है फिर भी क्योंकि हमारे पास बेरोजगारी की असल स्थिति का पता लगाने के लिये कोई वैकल्पिक स्रोत नहीं है। यदि हमें इन्हीं आधे अधूरे आंकड़ों पर निर्भर करना पड़ रहा है तो उसका यही कारण है। भारत में चालू दैनिक आधार (सीडीएस) पर वर्ष 1983 में बेरोजगारों की संख्या 2,16,10,000 थी जो 1993–94 में कम होकर 1,95,80,000 रह गई। नयी आर्थिक नीतियों के विनाशकारी दुष्परिणामों के चलते ये आंकड़े फिर से बढ़ने लगे हैं और वर्ष 1999–2000 में ये 2,64,40,000 तक पहुंच गए। इसमें शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारों की संख्या कितनी है, उसे अलग करके देखें तो पता चल जाएगा कि ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारों की संख्या पहले 1,61,80,000 थी, 1993–94 में कम होकर 1,43,10,000 रह गई और 1999–2000 में बढ़कर 1,93,10,000 हो गई। शहरी बेरोजगारी का भाग 1983 में 54 लाख था जो 1993–94 में बढ़कर 59,40,000 हो गया और 1999–2000 में और बढ़कर 71 लाख 20 हजार तक पहुंच गया।

बेरोजगारी की राष्ट्रीय वृद्धि दर 1983 से 1993–94 की अवधि में थोड़ी मंद गति से बढ़ी थी किन्तु 1993–94 से लेकर 1999–2000 के बीच यह बढ़ कर 4.55 प्रतिशत हो गई। इसके लिये जन विरोधी नयी आर्थिक नीतियां ही जिम्मेदार हैं। एक बार फिर ग्रामीण तथा शहरी बेरोजगारी के आंकड़े चौंका देने वाली सीमा तक पहुंच गए। वर्ष 1993–93 से 1999–2000 के बीच ग्रामीण बेरोजगारी की वृद्धि दर 5.13 प्रतिशत थी। दूसरी ओर 1983 से 1993–94 की अवधि में शहरी बेरोजगारी का प्रतिशत 0.85 था और 1993–94 से लेकर 1999–2000 के बीच की अवधि में यह बढ़ कर 3.76 प्रतिशत हो गया था। (**द इंडियन जर्नल आफ लेबर इकानामिक्स,** जनवरी–मार्च 20003)

दसवीं पंच वर्षीय योजना तथा रोजगार की संभावनाएं

दसवीं पंच वर्षीय योजना में रोजगार की संभावनाओं के अनुसार वर्ष 2001–2002 में बेरोजगार लोगों की अनुमानित संख्या लगभग 3,48,50,000 थी। (सीडीएस के आधार पर परिभाषित)। दसवीं पंच वर्षीय योजना की अवधि में बेरोजगारों की

संख्या में और कितनी बढ़ोतरी होगी, इसका अनुमान भी उसमें दिया गया है, उसके अनुसार उस समय बेरोजगारों की संख्या 3,52,90,000 हो जाएगी। योजना के दस्तावेज में कहा गया है कि रोजगारों की संभावित मांग, 7,01,40,000 से अधिक होगी, इससे निपटने के लिये रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की समस्या से हमें जूझना होगा। योजना के दस्तावेज में यह भी रेखांकित किया गया है कि, दसवीं पंच वर्षीय योजना के अंत तक बेरोजगारी की दर में कम से कम एक प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। (**दसवीं पंच वर्षीय योजना का दस्तावेजः** पृष्ठ 144-145)

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि दसवीं पंच वर्षीय योजना को बनाते समय सरकार ने मोंटेक सिंह आहलूवालिया की अध्यक्षता में एक टास्क फोर्स का गठन किया था। आहलूवालिया समिति ने अपनी रिपोर्ट दे दी और अभी एक वर्ष भी नहीं बीता था कि सरकार ने एक और विशेष दल (समिति) का गठन कर दिया। दसवीं पंच वर्षीय योजना की अवधि में प्रति वर्ष एक करोड़ रोजगार सुलभ कराने का लक्ष्य कैसे प्राप्त किया जाय। इसके लिये सिफारिशें देने का काम उस समिति को सौंपा गया। इस समिति के अध्यक्ष योजना आयोग के सदस्य डाक्टर एस पी गुप्त थे। आहलूवालिया तथा एस पी गुप्त द्वारा जो सिफारिशें की गई थीं, उनमें जमीन-आसमान का अंतर है।

आहलूवालिया की अध्यक्षता वाली समिति ने श्रम कानूनों में विनाशकारी तब्दीलियां लाने की सिफारिश की थी, इन तब्दीलियों में सेवा योजकों (मालिकों) को "हायर एण्ड फायर" (लगाओ-भगाओ) का मनमाना अधिकार देने की सिफारिश भी शामिल थी लेकिन एस पी गुप्त की अध्यक्षता वाले विशेष कामकाजी दल (अथवा समिति) का कहना था कि इस प्रकार का कदम उठाने से रोजगार पर विषम दुष्प्रभाव पड़ेगा, उसने सिफारिश की कि श्रम कानूनों को बदलने के मामले में सरकार अपनी गति धीमी रखे। संगठित क्षेत्र में रोजगार विहीन विकास चल रहा है और इसके फलस्वरूप रोजगार के अवसर सुलभ कराने के लिये देश को कृषि, छोटे उद्योगों तथा असंगठित क्षेत्र पर निर्भर करना पड़ रहा है, यह एक वास्तविकता है। किन्तु इस कटु वास्तविकता की ओर से आंखें मूंद कर आहलूवालिया समिति ने कृषि क्षेत्र के किवाड़ कार्पोरेट दैत्यों के लिये खोल देने और छोटे एवं लघु उद्योग में उत्पादन के लिये आरक्षित उत्पादों पर लगे आरक्षण को समाप्त करने की सिफारिश की थी। यह अनुभव करते हुए कि इस दृष्टिकोण को अपनाने से इन क्षेत्रों में भी रोजगारहीनता की स्थिति बन जाएगी, एस पी गुप्त समिति की आहलूवालिया समिति के साथ मतभिन्नता थी, उसने विचार व्यक्त किया था कि कृषि क्षेत्र में रोजगार की भारी संभावनाएं हैं और अगले पांच वर्षों में असंगठित क्षेत्र अधिक से अधिक रोजगार उपलब्ध कराएगा। जहां अहलूवालिया ने इस बात से इन्कार किया था कि सरकार को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिये विशेष कदम उठाने चाहिए

वहीं एस पी गुप्त ने रोजगार के विशेष कार्यक्रमों के लिये सरकार की विशेष भूमिका के पक्ष में अपने तर्क दिये थे।

तथापि, सरकार ने दसवीं पंच वर्षीय योजना की अवधि में प्रत्येक वर्ष एक करोड़ या दूसरे शब्दों में योजना की पूरी अवधि में पांच करोड़ रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य अपने सामने रखा। किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये बनाये गए विशेष कामकाजी दल (टास्क ग्रुप) ने निष्कर्ष निकाला कि अपरिवर्तित ढांचों के साथ प्रति वर्ष जी डी पी की 8 प्रतिशत विकास दर बनाए रखने और उत्पादन में बढ़ी हुई पूंजी की सघनता के जारी रहने विशेष रूप से संगठित क्षेत्र के फलस्वरूप एक वर्ष में केवल लगभग साठ लाख के अनुपात से रोजगार सुलभ कराये जा सकेंगे जो प्रति वर्ष एक करोड़ रोजगार सुलभ कराने के लक्ष्य से बहुत कम है।

एन डी ए सरकार वर्तमान में जिन नीतियों का पालन कर रही है उसके फलस्वरूप दसवीं पंच वर्षीय योजना में प्रति वर्ष 8 प्रतिशत विकास दर प्राप्त करने का घोषित लक्ष्य निरर्थक प्रतीत होता है। इस स्थिति में प्रति वर्ष 60 लाख रोजगार सुलभ कराना भी लगभग असंभव है। एक अनुमान के अनुसार 1994-2000 की अवधि में प्रति वर्ष केवल लगभग तीस हजार रोजगार सुलभ कराए जा सके हैं। (**बिजनस लाइन** 15-4-2003)।

नये रोजगार सुलभ कराने की संभावनाओं में पर्याप्त वृद्धि हो इसके लिये आर्थिक नीति की सत्ता की दिशा को बदल दिए जाने की आवश्यकता है। विशेष दल के शब्दों में यह बात हम इस प्रकार कहेंगे ''समिति का विचार है कि उत्पादन तथा रोजगार दोनों क्षेत्रों में जीवनक्षम तथा समतापूर्ण ढंग से देश के विकास लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये निकट भविष्य में पिछली आर्थिक नीतियों में अनेक बड़ी तब्दीलियां करने तथा रोजगारन्मुखी अभिनव कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता होगी।'' विशेष दल अथवा समिति ने यह विचार भी व्यक्त किया था, कि ''यदि नब्बे के दशक के अनुभवों से लाभ उठाया गया दूसरे शब्दों में उन्हें भविष्य में भी दोहराया गया तब भारत को बेरोजगारी में बेतहाशा वृद्धि की स्थिति को झेलना पड़ेगा, उसके साथ ही रोजगारों की मांग तथा रोजगार अवसरों की सुलभता में अन्तर पहले की भांति गहरा होता चला जाएगा।''

दूसरे शब्दों में दल अथवा समिति ने यह सुझाव भी दिया है कि सरकार की नीतियों का रुख बदला जाए तथा ये नीतियां श्रम सघनता को बढ़ाने वाली तथा पूंजी की बचत करने की प्रौद्योगिकी वाली होनी चाहिए। किन्तु हमें यह समझने में भूल नहीं करनी चाहिए कि सब कुछ बाजार की शक्तियों के भरोसे छोड़ कर यह काम किया ही नहीं जा सकता। इसके लिये उदारीकरण तथा साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण की नीतियों को बदलने की आवश्यकता है। विशेष रूप से छोटी एवं मंझोली इकाईयों और उनके साथ ही असंगठित क्षेत्र का उल्लेख करते हुए विशेष दल

अथवा समिति ने सिफारिश की है "श्रमिकों की सघनता वाले उद्योगों के पक्ष में पूंजी का नये सिरे से आवंटन करने के लिये उपयुक्त कार्यक्रमों तथा नीतियों का निर्धारण इस ढंग से किया जाना चाहिए कि उससे प्रगति एवं विकास को बढ़ावा मिले। इस क्षेत्र के लिये एक समान नियम लागू हो, इसे भी सुनिश्चित बनाना होगा। उद्योगों के बड़े क्षेत्र की तुलना में इस क्षेत्र को संरक्षण (पक्षपात की सीमा तक) एवं सुरक्षा प्रदान करने की जरूरत है जिसे बाजार के प्रभु सुनिश्चित नहीं बना सकते।

"यही नहीं, हमें इस तथ्य से भी सबक सीखना होगा कि नयी आर्थिक नीति की सत्ता के अंतर्गत तथाकथित उच्चतर आर्थिक विकास नये रोजगार सुलभ कराने में बुरी तरह नाकाम रहा है। इसलिये इस बात में को शक अब नहीं कि बेरोजगारी में कमी लाने के लिये उच्चतर विकास कर लेना ही काफी नहीं है। क्योंकि उच्चतर आर्थिक विकास कर लेने मात्र से ही आर्थिक उदारीकरण की सत्ता के अंतर्गत भारत में बेरोजगारी की समस्या से निपटा नहीं जा सकता इसलिये रोजगार को बढ़ावा देने के लिये सरकार द्वारा और अधिक जोरदार ढंग से हस्तक्षेप किये जाने की जरूरत है।" (एस के भौमिक 2003)

रोजगार लोचनीयता

रोजगार की लोचनीयता में भारी कमी आई है। यह एक और विचलित कर देने वाली घटना है। इस मामले में चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा गया है कि "वर्ष 1983-88 अर्थव्यवस्था की रोजगार लोचनीयता (वह सीमा जहां अतिरिक्त उत्पादन, अतिरिक्त रोजगार पैदा करता है।) में कमी आई है, लगता है इस मामले में कोई चौकसी नहीं बरती गई, यह लोचनीयता 0.68 से कम होकर वर्ष 1993-2000 के मध्य केवल 0.16 प्रतिशत रह गई। सबसे तेज गिरावट कृषि के क्षेत्र में आई है जहां इसी अवधि में रोजगार की लोचनीयता 0.87 से कम होकर 0.01 प्रतिशत रह गई। इसका ठोस उदाहरण हम इस प्रकार देते हैं कि कृषि उत्पादन में 5 प्रतिशत की वृद्धि का परिणाम अस्सी के दशक में 4.39 प्रतिशत की रोजगार वृद्धि के रूप में निकल सकता था, वह वर्तमान में केवल मात्र 0.05 प्रतिशत की रोजगार वृद्धि के रूप में निकलेगा।" (**बिजनस स्टेंडर्ड** 7-08-03)

रोजगार परिप्रेक्ष्य पर दसवीं पंच वर्षीय योजना के दस्तावेज के अनुसार "उत्पादन वृद्धि की रोजगार सघनता की गिरावट का वर्णन पूंजी की सघनता में वृद्धि अथवा श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि के रूप में किया जा सकता है। श्रमिकों को कार्य मुक्त कर दिया जाता है और पूंजी श्रम का विकल्प बन जाती है," इसे श्रम सघनता वाले क्षेत्रों तथा प्रौद्योगिकियों की ओर ध्यान देने की समर नीतियां कहा जाता है।

रोजगार की लोचनीयता में इस प्रकार की कमी क्यों आती है? इसके कारणों का पता लगाना कठिन नहीं है। पूंजी की सघनता वाली अत्यंत आधुनिक प्रौद्योगिकी उत्पादन तथा उत्पादकता को बढ़ाने में निश्चित रूप से योगदान देती है। किन्तु वह

उसके साथ ही साथ रोजगार लोचनीयता की हत्या भी कर देती है। एक आर्थिक स्तंभ लेखक ने विचार व्यक्त किया है "भारतीय उद्योग में अधिकांश प्रौद्योगिकीय परिवर्तन श्रम उत्पादकता में सुधार लाने के लिये किये गए और इसलिये उनके फलस्वरूप प्रति इकाई उत्पादन के लिये श्रम की आवश्यकता कम हो गई है।"

इस संबंध में आइ एल ओ के विचारों का उल्लेख करना असंगत नहीं होगा कि "विकासशील देशों में निवेश तथा व्यापार की रोजगार उपलब्ध कराने की क्षमताओं को पैदा करने के लिये एक बुनियादी शर्त मैन्युफैक्चर्स तथा आधुनिक सेवाओं में उसका बदलाव है, दूसरे शब्दों में प्राथमिक उत्पादों के निर्यात पर निर्भरता से बहुत दूर चले जाना।"

यह तर्क देना कि यदि सेवायोजकों को "हायर एण्ड फायर" अर्थात वे जब चाहे श्रमिकों को काम पर रखें और जब चाहें दूध में से मक्खी की भांति निकाल कर बाहर फेंक दें, का अधिकार दे देने से संगठित क्षेत्र को रोजगार के प्रति अधिक मित्रवत बनाया जा सकता है और इस क्षेत्र में रोजगार सुलभता की स्थिति में सुधार लाया जा सकता है, सरासर गलत है। इसका उल्लेख करते हुए विशेष समिति ने रेखांकित किया था, "इस क्षेत्र, विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र में पहले से ही श्रमिकों की भरमार है, यह एक तथ्य है। उसका तात्कालिक प्रभाव श्रमिकों को काम पर रखने की अपेक्षा उन्हें काम से अधिक निकाले जाने के रूप में पड़ेगा।"

हमारे देश में 60 प्रतिशत रोजगार अकेला कृषि क्षेत्र उपलब्ध कराता है, यह एक तथ्य है, किन्तु किसी भी देश के लिये यह एक अच्छी और स्वस्थ्यकर स्थिति नहीं है। अब **आर्थिक सर्वेक्षण 2002-2003** के अनुसार वर्ष 1994-2000 में रोजगार की वृद्धि दर में गिरावट इसलिये आई थी क्योंकि उस समय अधिकतर कृषि के क्षेत्र में उपलब्ध रोजगारों के मामले में लगभग ठहराव की स्थिति बन गई थी। इसके परिणामस्वरूप रोजगार की कुल उपलब्धता में कृषि के भाग में काफी गिरावट आ गई थी, 1993-94 में उसका भाग 60 प्रतिशत था जो कम होकर 1999-2000 में 57 प्रतिशत रह गया। परेशान करने वाला एक और पहलू भी है कि "लगभग 75 प्रतिशत बेरोजगार ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और इन बेरोजगार लोगों में से 60 प्रतिशत पढ़े लिखे हैं।" (**इकानामिक टाइम्सः** 23-02-2003)

यह श्रमिकों के कारोबार पर निर्भर करता है जिन्हें तीन अलग-अलग क्षेत्रों में बांटा जा सकता है:- (क) प्राथमिक क्षेत्र जो अधितर कृषि पर आधारित होता है, (ख) माध्यमिक क्षेत्र, यह उद्योगों और उत्पादन केन्द्रों पर आधारित होता है, (ग) तीसरा क्षेत्र जिसमें व्यापार, सरकारी सेवाएं तथा असंगठित रोजगार आता है। भारत क्योंकि मूल रूप से कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है, इसलिये प्राथमिक क्षेत्र की ओर रोजगार अवसर सुलभ कराने वाले क्षेत्र के रूप मे बड़ी आशाओं के साथ देखा जाता है। बात केवल आशा और वास्तविकता की नहीं है, जो भी हो यह कोई आदर्श

स्थिति नहीं है।

देश के कृषि क्षेत्र में व्यापक स्तर पर विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दाखिले और इससे भी बढ़कर डब्लू टी ओ सत्ता के अंतर्गत मात्रात्मक प्रतिबंधों की समाप्ति के चलते कृषि के क्षेत्र में रोजगार की संभावनाओं पर बहुत बुरा असर पड़ा है। जबरदस्त मशीनीकरण होने, जिसमें आधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग भी शामिल है, के फलस्वरूप भूमि तथा सिंचाई के प्रबंधन में भी तब्दीलियां आ जाएंगी। इसलिये कृषि के क्षेत्र में रोजगार की उपलब्धता में जबरदस्त गिरावट आना लाजमी है। एक बार फिर कहेंगे कि उद्योगों का छोटा एवं लघु क्षेत्र जहां पूंजी का निवेश कहीं कम होता है, पूंजी की सघनता वाली बड़ी औद्योगिक इकाईयों की अपेक्षा अधिक रोजगार उपलब्ध कराता है। भारतीय सांख्यिकीय सेवा की ओर से कराये गए एक अध्ययन के अनुसार 100 करोड़ रुपये से अधिक पूंजी के आकार वाली औद्योगिक इकाई जिसके पास औद्योगिक क्षेत्र की कुल पूंजी में से 61.76 प्रतिशत शेयर हैं, में प्रति इकाई रोजगार के आनुपातिक आकार में लगभग 36 प्रतिशत रोजगार में गिरावट आई है। अब सरकार क्योंकि छोटे एवं लघु क्षेत्र के घोर विरोध की नीति का पालन कर रही है इसलिये छोटे एवं लघु उद्योगों के क्षेत्र में औद्योगिक बीमारी महामारी का रूप ले चुकी है। इसके दुष्परिणमस्वरूप न केवल रोजगार उपलब्ध कराने वाले एक प्रमुख स्रोत की हत्या हो गई है बल्कि दसियों हजार श्रमिक अपने रोजगारों से वंचित हो गए हैं।

रोजगार उपलब्ध कराने के मामले में सार्वजनिक क्षेत्र हमारे देश में प्रमुख भूमिका निभाता रहा है, यह एक सुस्थापित तथ्य है। तथापि, उत्तरोत्तर बनने वाली सरकारें सार्वजनिक क्षेत्र के घोर विरोध तथा निजीकरण की नीति का पालन करती रही हैं इसके चलते स्थिति में बदलाव आ गया है। पुनर्गठन के नाम पर औद्योगिक उपक्रमों तथा वाणिज्यिक गतिविधियों का भंग करना व तोड़ते और जोड़ते रहना उनके प्रबंधों का रोजमर्रा का शगल बन चुका है; ये प्रबंधन सार्वजनिक क्षेत्र के हों अथवा निजी क्षेत्र के, उनका शगल एक जैसा ही है। इस भयानक कुचक्र में श्रमिकों की विशाल संख्या अतिरिक्त अथवा फालतू हो जाती है और उनकी बेरहमी के साथ छंटनी कर दी जाती है। एक के बाद एक, बनने वाली सरकारों की ओर से श्रमिकों को पुर्नप्रशिक्षण देने और उनकी पुर्ननियुक्ति करने के लिये अनेक कार्यक्रमों की घोषणाएं समय-समय पर की जाती रही हैं किन्तु ये सभी घोषणाएं अब तक केवल ढकोसला ही सिद्ध हुई हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के केन्द्रीय उपक्रमों में रोजगारों की भयंकर क्षति हुई है, इसके फलस्वरूप देश में बेरोजगारी की स्थिति व्यापक स्तर पर बद से बदतर हो चुकी है। सार्वजनिक क्षेत्र के केन्द्रीय उपक्रमों में वर्ष 1991-92 में कुल श्रम शक्ति 21 लाख 80 हजार थी जो मार्च, 2003 तक कम होकर 17 लाख 40 हजार रह गई थी। दूसरे

शब्दों में सत्ताधारी वर्गों ने जब से देश को विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के मकड़जाल में फंसाया है तब से सार्वजनिक क्षेत्र के केन्द्रीय उपक्रमों के 4 लाख 40 हजार श्रमिकों की छंटनी की जा चुकी है।

इस मामले में निजी क्षेत्र की स्थिति कुछ बेहतर नहीं कही जा सकती है। आधुनिकीकरण, विलीनीकरण तथा औद्योगिक इकाईयों की कामबंदी, स्थान की बदली के चलते हुई छंटनियों और श्रम शक्ति का आकार कम करने के लिये की गयी कार्रवाईयों ने लाखों रोजगारों की हत्या कर डाली है। इंजीनियरिंग, टेक्सटाइल, फार्मास्युटिकल इत्यादि कुछ ऐसे क्षेत्र है जहां अत्यंत व्यापक स्तर पर श्रमिकों की छंटनी की जा चुकी है।

औद्योगिक बीमारी बेरोजगारी की स्थिति को बद से बदतर बनाने में अपना योगदान दे रही है। बीमार इकाईयों के श्रमिकों की भारी संख्या में छंटनी की जा रही है। जहां तक बीमार औद्योगिक इकाईयों तथा श्रमिकों की छंटनी का संबंध है, "अब तक 1451 इकाइयों को बीमार घोषित किया जा चुका है, 343 इकाईयों ने अपने किवाड़ बंद कर लिये हैं और इनसे प्रभावित होने वाले श्रमिकों की संख्या 6,40,379 हो चुकी है। (**बिजनस लाईन**: 14-06-2003)

नौजवानों में बेरोजगारी की समस्या

नौजवानों में बेरोजगारी की समस्या पूरी दुनिया में बढ़ रही है। यह भयानक रूप ग्रहण करती चली जा रही है। स्थिति खतरनाक हो गई है और इस समस्या ने संयुक्त राष्ट्र तथा आइ एल ओ सहित विश्व के प्रमुख संस्थानों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। यही वह अवधारणा थी जिसने आइ एल ओ को अपने जिनेवा स्थित मुख्यालय में 16 जुलाई 2001 को एक महत्वपूर्ण कार्रवाई अथवा विचार विमर्श करने के लिये प्रेरित किया था। संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख महासचिव कोफी अन्नान ने विश्व बैंक के अध्यक्ष जेम्स डी वोल्फेन्शन तथा आइ एल ओ के महानिदेशक जुआन सोमाविया के साथ मिल कर 12 गणमान्य व्यक्तियों पर आधारित एक उच्च स्तरीय समिति के साथ मुलाकात की थी।

नौजवानों में बेरोजगारी की दर बालिग व्यक्तियों की बेरोजगारी की दर से दो-तीन गुणा अधिक है। कुछ देशों में नौजवानों में बेरोजगारी चौंका देने वाली सीमा तक बढ़ चुकी है। कुछ समय पहले इस संबंध में 98 देशों में एक अध्ययन कराया गया था। उस अध्ययन से पता चला कि 51 देशों में नौजवानों की बेरोजगारी की दर 15 प्रतिशत थी। आई एल ओ के अपने आंकड़ों के अनुसार यूरोपीय देशों में यह दर 30 प्रतिशत थी जबकि कुछ विकासशील देशों में नौजवानों की बेरोजगारी की दर 40 तथा 50 प्रतिशत तक पहुंच चुकी है। (**वर्ल्ड आफ वर्क**: 8/2001)

आइ एल ओ द्वारा किये गए आंकलन के अनुसार विश्व भर में बेरोजगारों की कुल संख्या में नौजवानों का भाग 40 प्रतिशत से अधिक है। वर्ष 2001 में बेरोजगारों

की संख्या 6 करोड़ 60 लाख थी- वर्ष 1965 के पश्चात उसमें एक करोड़ की वृद्धि हुई है। किन्तु जून 2003 में आइ एल ओ के सत्र में पेश की गई महानिदेशक की रिपोर्ट में बताया गया कि "आइ एल ओ ने अनुमान लगाया है कि लगभग 7 करोड़ 40 लाख नौजवान महिलाएं और पुरुष विश्व भर में बेरोजगार हैं। भूमण्डलीय स्तर पर उनकी संख्या बेरोजगारों की कुल संख्या 18 करोड़ का 41 प्रतिशत बनती है। इसके अतिरिक्त वे लोग भी हैं जो अत्यंत अल्प वेतनों पर अधिक घण्टे काम पर लगते हैं।"

विश्व भर में इतनी भारी संख्या में नौजवानों का बेरोजगार होना जैसा कि महानिदेशक की रिपोर्ट में रेखांकित किया गया है। दरिद्रता का एक ऐसा कुचक्र चलाता है जो अनेक पीढ़ियां बीत जाने पर भी पीछा नहीं छोड़ता और यह अपराधों, हिंसा, मादक पदार्थों के दुरुपयोग तथा राजनीतिक चरमपंथ के उभार के ऊंचे स्तरों के साथ जुड़ा हुआ है। कुछेक देशों में नौजवानों के पास केवल एक ही धंधा होता है जिसमें लग कर वे अपनी आजीविका कमा सकते हैं-यह धंधा है, सामाजिक टकरावों में लगे हथियारबंद गिरोहों में शामिल हो जाना।

नौजवानों में बेरोजगारी की समस्या के विस्फोटक पहलू को आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी समझा जाना चाहिए। एक पढ़े लिखे नौजवान की बेरोजगारी कामकाजी दुनिया से उसका बहिष्कार होती है। वह उसमें भाग लेने से वंचित रह जाता है। देश के निर्माण की गतिविधियों में उसकी कोई भूमिका नहीं होती। नौजवान लोग स्वभाव की दृष्टि से भी तुनक मिजाज तथा मानसिक रूप से 'टची' किस्म के होते हैं, कोई भी बात जल्दी ही दिल को लगा बैठते हैं। नौजवान लोगों को उचित रूप में व्यस्त बनाए रखना और वे सामाजिक प्रगति के कार्यों में दिलचस्पी लेते रहें, यह एक बहुत बड़ी चुनौती का काम है और पूरी दुनिया इस प्रकार की चुनौतियों का सामना इन दिनों कर रही है (**हिंग्गिन्स,** 1997)। रिपोर्ट इस ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करती है कि नौजवानों में बेरोजगारी के खतरे कितने अधिक व्यापक हैं, उसमें जोर देकर कहा गया है कि रोजगारहीनता की स्थिति नौजवानों को गलत कामों अर्थात अपराधों की दुनियां में धकेल सकती है, वे मादक पदार्थों के धंधे में लग जाते हैं, समाज के प्रति उनमें एक प्रकार से अलगाव की भावना पैदा हो जाती है, यह स्थिति आगे चल कर सामाजिक टकरावों और अशांति को जन्म देती है।

गरिमापूर्ण रोजगारों में गिरावट

जब हम अलग-अलग दृष्टिकोण से इस समस्या पर विचार करते हैं तब हमें लगेगा कि रोजगार की गुणवत्ता में लगातार गिरावट आती चली जा रही है, यह एक बहुत परेशान कर देनेवाला पहलू है। रोज़गार का आकस्मीकरण (अचानक काम मिल जाना और उसकी कोई समय सीमा नहीं होना) तेजी से बढ़ता चला जा रहा है।

यह बढ़ता चला जा रहा आकस्मीकरण या दूसरे शब्दों में रोजगार का क्षण भंगुर बन जाना, रोजगार के परिदृश्य पर गहरी चिंता का विषय बना रहा है। संगठित क्षेत्र में स्थायी रोजगार की कटौती होने के प्रमुख कारणों में से इस बढ़ते आकस्मीकरण की विभीषिका ही है। सेवायोजकों अथवा मालिकों के सर्वव्यापी सामाजिक एवं आर्थिक उत्पीड़न व शोषण की सबसे अधिक पीड़ा इन्हीं अस्थाई श्रमिकों को झेलनी पड़ती है। श्रमिकों की इस श्रेणी को ट्रेड यूनियन अधिकार प्राप्त नहीं होते और न ही उनके लिये रोजगार की कोई सुरक्षा होती है। रोजगार कब मिलेगा और कब उनसे छिन जाएगा, इसका पता तो खुद उन्हें भी नहीं होता। इसलिये अस्थायीकरण-आकस्मीकरण विरोधी संघर्ष अभिन्न रूप से बेरोजगारी के खिलाफ संघर्ष के साथ जुड़ा हुआ है, दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

भारत जैसे विकासशील देशों में जहां लोगों की एक बहुत बड़ी संख्या गरीबी की रेखा के नीचे रह रही हो, श्रम शक्ति काम के बिना नहीं रह सकती क्योंकि भूख दैत्य लगातार उसे सताता रहता है और वे अर्थात श्रमिक मजबूर होकर कोई भी काम करने के लिये तैयार हो जाते हैं। काम के बदले उन्हें कितना कम मेहनतांना मिलता है, यह बात सोचने की स्थिति में भी वे नहीं होते। दूसरे शब्दों में एक गरीब व्यक्ति अपने घर में निठल्ला बैठ ही नहीं सकता, उसे बेरोजगारी रास ही नहीं आती। जो लोग रोजगार में लगे होते हैं उनमें भी एक तिहाई गरीब होते हैं, हम इसे एक विडंबना ही कहेंगे। पूरी जनसंख्या में गरीब लोगों का न्यूनाधिक यही अनुपात है। गरीब परिवार के साथ संबंध रखने वाले एक बेरोजगार को जो बहुत अधिक पढ़ा लिखा होता है और जिसमें कारोबारी योग्यताएं भी कम नहीं होती, मजबूर होकर ऐसा रोजगार स्वीकार करना पड़ता है जो उसकी योग्यता के स्तर से कहीं कमतर होता है। वह भले ही रोजगार में हो पर उसकी हालत एक समृद्ध परिवार के बेरोजगार व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक बदतर होती है। इसलिये हमारे लिये यह बात समझना बहुत जरूरी हो जाता है कि हमारे देश में बेरोजगारी की स्थिति कितनी अधिक भयानक है और यह किन बुलंदियों को छू रही है। घोर दरिद्रता तथा रोजगार -बेरोजगारी- अर्धरोजगारी के बीच के संबंधों को समझना तथा उसे रेखांकित करना भी जरूरी है।

रोजगार पर लगे लोगों का सर्वेक्षण करते समय रोजगार की गुणवत्ता पर विचार करना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत जैसे विकासशील देशों में रोजगार की गुणवत्ता को क्षति पहुंचा कर रोजगार का अनुमान बढ़ा चढ़ा कर लगाया जाता है और अर्ध रोजगार की भयावहता को कम करके देखा जाता है। एस पी गुप्त समिति की रिपोर्ट के प्राक्कथन में भारत के योजना आयोग के उपाध्यक्ष ने रेखांकित किया है, कि "टास्क फोर्स (आहलूवालिया समिति) ने शायद अर्ध रोजगार के पिछले "बैकलाग" के अम्बार को नहीं देखा जो उतना ही खतरनाक एवं विनाशकारी हो सकता है

जितना खुली बेरोजगारी।"

बाहर से काम कराने की प्रक्रिया

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली दिन प्रतिदिन गहरे संकट की दलदल में धंसती चली जा रही है, उसकी अपनी व्यवस्था ही उसे नष्ट करती चली जा रही है। उसके बाजारों में ठहराव अथवा निश्चलता की स्थिति बनी हुई है और निश्चलता के इस बावेले ने कारोबारी जगत के दैवों यहां तक कि जी-8 देशों को भी अपनी चपेट में ले लिया है। संकट का बोझ अपने कंधों से उतार कर वे श्रमिक वर्ग के कंधों पर डाल रहे हैं और इसके लिये वे एक के बाद दूसरा श्रमिक विरोधी घिनौना हथकंडा अपना रहे हैं। उनका लाभ कहीं कम न हो जाए इससे बचने के लिये वे पूंजीवाद समर्थक सत्ताधारी वर्गों से भारी भरकम रियायतें-सुविधाएं लेते चले जा रहे हैं। रोजगार का अस्थायीकरण ही नहीं बल्कि आकस्मीकरण कर देना उनकी बर्बर कार्यशैली का एक अंग है। दूसरे शब्दों में यह अब एक भूमण्डलीय घिनौनी कार्यशैली बन चुकी है। इसके लिये ये लोग पुराना घिसापिटा, पूजीवादी राग यदाकदा अलापा करते हैं। यह राग है उत्पादकता को बढ़ाना, लागत मूल्य प्रभावी होने चाहिए, और बाजार में प्रतिस्पर्धी बने रहना इत्यादि। असलियत क्या है? यह राग सुना कर वे श्रमिकों के कंधों पर काम का और अधिक भारी बोझ डाल देते हैं। उन्हें बहुत ही कम पैसे देते हैं, नौकरी की सुरक्षा की बात ही नहीं करते और सामाजिक सुरक्षा की तो बात ही मत कीजिये।

कारोबारी जगत में बाहर से काम कराने की प्रक्रिया अर्थात बी पी ओ का आरंभ 1990 के दशक में हुआ था। पहले छोटे-मोटे काम ही बाहर से कराए जाते थे जैसे डाटा एंट्री, मैडिकल ट्रांसक्रिप्शन और छोटे काल सेंटर्स के काम इत्यादि, अब इस मामले में जबरदस्त परिवर्तन आ चुका है। वर्तमान में इंजीनियरिंग, वित्तीय शोध, पेरोल तथा लेखा सेवाएं, बीमा संबंधी दावे, आर एण्ड डी आप्रेशन्स के लिये तकनीकी सहायता, चिप डिजाइन, टैली मार्केटिंग और यहां तक कि साफ्टवेयर सेवाएं जैसी सूचना प्रौद्योगिकी की अत्यंत परिष्कृत सेवाएं भी बाहर से कराई जाने लगी हैं। बी पी ओ का वर्गीकरण 'आधुनिक उद्योग' की एक शाखा के रूप में किया जाने लगा है। यह अपेक्षा की जाती है कि यह अगले पांच वर्षों तक 140 अरब अमरीकी डालर वाला उद्योग बन जाएगा। वर्तमान में 500 बड़े अमरीकी उद्यमों जो उस समय भी थे, में से एक चौथाई निगम अपना काम बाहर से करा रहे हैं। अमरीकी समाचार पत्रों में प्रकाशित समाचारों के अनुसार पिछले दो वर्षों में बाहर से काम कराए जाने के कारण लगभग 25 लाख रोजगारों की क्षति हो चुकी है। उनके अपने अनुमान के अनुसार इनमें से 5,60,000 रोजगार अत्यंत कुशल व्हाइट-कालर रोजगार हैं। फोरेस्टर रिसर्च इंक ने कहा है कि अगले 15 वर्षों में लगभग 33 लाख व्हाइट-कालर रोजगार अथवा काम बाहर से कराए जाने लगेंगे और 136 अरब

अमरीकी डालर के वेतनों की राशि बाहर से काम कराने पर खर्च होने लगेगी। (ईएफ 15.06.03)

बी पी ओ वास्तव में ही श्रमिक वर्ग पर दुष्प्रभाव डाल रही है, उस देश में भी जहां का काम बाहर से कराया जाता है और उस देश में भी जहां पर दूसरे देश का काम कराया जाता है। यह रोजगार तथा पारिश्रमिक दोनों पर दुष्प्रभाव डाल रही है।

बी पी ओ श्रमिक वर्ग के शोषण एवं उत्पीड़न का हथकण्डा बन चुका है। प्रबंधन को सलाह देने वाली फर्म इंडिक्टिस द्वारा कराए गए अध्ययन के अनुसार अमरीकी कंपनियां भारत से काम करा कर प्रति वर्ष अरबों डालर बचा लेती हैं। अमरीका के बैंकिंग उद्योग ने ही अकेले पिछले चार सालों में अपना काम बाहर अथवा भारत से करा कर 8 अरब डालर से अधिक राशि की बचत की है। बाहर से काम करने वाली अर्थ व्यवस्थाओं में सबसे अधिक लाभ में रहने वालों में अमरीका की बहुराष्ट्रीय कंपनियां ही हैं। उदाहरण के लिए अकेली जी ई ने बाहर अर्थात दूसरे देशों के 18,000 कर्मचारियों से काम लेकर प्रति वर्ष 35 करोड़ डालर से अधिक राशि की बचत की है। 1.4 बिजनस लाइन 19.4.03, 1.2 अमरीका तथा भारत में दिये जा रहे वेतनों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि भारत में इंजीनियर लगभग 5,000 से लेकर 10,000 अमरीकी डालर कमाते हैं, उसकी तुलना में अमरीका में वे कम से कम 50,000 अमरीकी डालर कमा लेते हैं। (एफइ 15.07.03)

बेरोजगारी की भयानक समस्या का सामना करने के लिये अमरीका के श्रमिक वर्ग तथा श्रमिक आंदोलन ने बी पी ओ के खिलाफ संघर्ष में अपने बाजू लहराने शुरू कर दिये हैं। वे उन कंपनियों का काफिया टाइट कर रहे हैं जो सीधे ठेके देकर अपना काम विदेशी श्रमिकों से कराती हैं। श्रमिकों की ओर से न्यूयार्क में एक कंपनी वाल्डरोफ-आस्टोरिया के आगे प्रदर्शन किया गया, उस समय वहां आउट सोर्सिंग कान्फ्रेंस चल रही थी, यह जुलाई 03 के पहले सप्ताह की बात है। सिएटल में शहर के चैम्बर आफ कामर्स के सामने जहां स्थानीय अधिकारी बाहर से काम कराने वाली एक बरतानवी कंपनी के साथ बैठक कर रहे थे, एक रैली का आयोजन किया गया था। प्रदर्शनकारियों ने अपने हाथों में तख्तियां उठाई हुई थीं जिनमें लिखा था: "हम जातिवादी नहीं हैं, हम विदेशियों से घृणा अथवा द्वेष नहीं करते, हम कट्टरपंथी भी नहीं हैं, हम विस्थापित अमरीकी श्रमिक हैं। हमारे महान देश में विदेशियों का उपयोग गुलामों एवं मजदूरों के रूप में किया जा रहा है। यह हमारे लिये लज्जा का विषय है, इससे हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिल रही है।" (बिजनस स्टैंडर्ड 16.6.03) इन्हीं विरोध प्रदर्शनों से प्रभावित होकर न्यू जर्सी, वाशिंगटन, मेरिलैंड, कोनेटिक्टकट तथा मिसूरी जैसे अमरीकी राज्यों से संबंध रखने वाले सीनेटर्स ये विधेयक लाने के लिये प्रेरित हुए थे जिनमें उन्होंने मांग की थी कि बाहर से काम कराने के मामले में राज्य सरकारों पर पाबंदी लगाई जाए।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का भ्रम

सरकार इन दिनों जोरशोर के साथ प्रचार कर रही है कि देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का प्रवाह अधिक से अधिक होने के फलस्वरूप देश के आर्थिक विकास में सहायता मिलेगी और उसे आशा है कि उसके चलते देश में रोजगारों के नये अवसर खुद व खुद पैदा होने लगेंगे, यह प्रचार खोखला है, झूठा है, इसमें कोई संदेह नहीं। विकासशील देशों के बीच प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिये गला काट प्रतिस्पर्धा चल रही है, उनके द्वारा बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारी भरकम रियायतें एवं छूटें दी जा रही हैं, आइ एल ओ ने इसकी तीखी निंदा की है। विकासशील देश पिछले दो दशकों से साम्राज्यवादियों के इशारों पर नाच रहे हैं, वे उनके हाथों में खेलने लगे हैं और उन्होंने बड़े नाटकीय ढंग से अपने बाजारों में विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दाखले पर लगे सभी प्रतिबंध समाप्त कर दिये हैं, संबंधित देश यह सब अपनी आत्म निर्भरता और देश की आर्थिक संप्रभुता के मूल्य पर कर रहे हैं, उन्होंने इन विदेशी कंपनियों को कर अवकाश, आयात शुल्कों से छूट तथा प्रत्यक्ष सब्सिडियों जैसे प्रोत्साहन दिये हैं, इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आइ एल ओ के महानिदेशक ने कहा है कि 'वर्ष 1998 के पश्चात 103 देशों ने विदेशी निगमों को करों में छूटें दी हैं। यह शंका जाहिर की जा रही हैं कि अत्यंत चलायान विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिये जारी प्रोत्साहनों की यह जंग कहीं उत्पादन कार्यों को बड़ी आसानी से उन देशों में तब्दील न कर दे जो इस दौड़ में बहुत नीचे गिर सकते हैं और वित्तीय प्रतिस्पर्धा एवं पर्यावरण अथवा श्रम संबंधी मानकों के मामले में पहले से ही बदनाम हैं और बहुत नीचे गिर सकते हैं।' महानिदेशक ने अपनी बात को और आगे बढ़ाते हुए कहा कि 'उनके यहां राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी को कम करने की नीतियों को लागू करने के लिये उपलब्ध संसाधनों की पहले से ही कमी चली आ रही थी। विदेशी निवेशकों को जो रियायतें दी गई थीं उनके कारण उनके संसाधनों में और अधिक अर्थात उल्लेखनीय सीमा तक कमी आ गई है।'

प्रत्यक्ष पूंजी निवेश के अंतर्राष्ट्रीय खिलाड़ी-बहुराष्ट्रीय निगम- संबंधित देश में न अधिक विदेशी पूंजी लेकर आए हैं और न ही उन्होंने वहां रोजगारों के अवसर उपलब्ध कराए हैं। इसके विपरीत बहुराष्ट्रीय निगमों ने स्वदेशी पूंजी को चूसा है और रोजगारों की हत्या की है। विकासशील देशों को अपनी प्रौद्योगिकी तथा दूसरी तकनीकी जानकारियां उपलब्ध कराना तो दूर की बात है, उनसे इसकी आशा ही कैसे की जा सकती है? विकासशील देशों की अर्थ व्यवस्था में निवेश करने तथा रोजगार उपलब्ध कराने के मामले में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका पर कराये जा चुके अनेक अध्ययनों के आधार पर कहा गया है कि लाभों तथा रायल्टियों के वार्षिक निर्यात की तुलना में पूंजी का आयात कहीं कम था, उसके बाद जो निवेश किया गया वह उसी पूंजी में से था जो स्थानीय पूंजी बाजार में से ली गई थी और

लाभों के रूप में कमाई गई राशि का ही नए सिरे से निवेश किया गया। बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिये कोई कोशिश नहीं की गई। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने स्वयं स्वीकार किया है कि साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण बेरोजगारी को बढ़ा रहा है। कोष द्वारा कराए गए अध्ययन (स्लाटर एण्ड स्वागल-1997), में रेखांकित किया गया है, भूमण्डलीकरण उच्चतर बेरोजगारी रूपी सिक्के का ही दूसरा नाम है।

इसलिये प्रत्यक्ष पूंजी निवेश शुद्ध रूप में रोजगारों का हत्यारा है, यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है। वास्तव में होने वाले प्रत्यक्ष पूंजी निवेश का 75 प्रतिशत धन विलीनीकरण तथा अधिग्रहणों के माध्यम से आता है, इसका प्रमुख कारण यही है। हमारे देश में वर्ष 1993-1994 के पश्चात विलीनीकरणों तथा अधिग्रहणों (एम एंड ए) के लगभग 300 मामले हो चुके हैं। जहां एम एण्ड ए का पिशाच गया वहां उसने बड़े धड़ल्ले के साथ श्रमिकों की छंटनियों के काम को पूरा किया और इसे विभागों की कामबंदी, अल्ट्रा माडर्न टैक्नीक लाने, उत्पादन की विभिन्न गतिविधियों को एक साथ जोड़ने जैसी कार्रवाईयों के खाते में डाल दी गयी। इसके अतिरिक्त अत्यंत कुशल श्रमिकों को बहुत कम संख्या में भर्ती करके उसके बदले में पहले से काम पर लगे श्रमिकों की भारी संख्या की छंटनी जैसा काम भी किया गया, यह एक कटु वास्तविकता है।

बुनियादी प्रश्न

"बेरोजगारी की समस्या मूल रूप से पूंजीवादी समाज की देन है, यह उसके कारण ही पैदा होती है। इसलिये इस समस्या का कोई स्थाई समाधान नहीं हो सकता जब तक कि इस समाज व्यवस्था को ही बदला नहीं जाता। पूंजीवाद के बुनियादी दुष्परिणामों में से एक दुष्परिणाम, पूंजीवादी संचय के नियम का दुष्परिणाम, बढ़ती ही चली जा रही बेरोजगारी है। विश्व भर में कोई भी पूंजीवादी देश इस समस्या से बच नहीं सकता।" **(बी टी रणदिवे)**

बेरोजगारी के मूल कारणों को दूर करने के लिये अपने अभियान, प्रचार और आंदोलन के साथ-साथ हमें उन लोगों को राहत दिलाने और इसके लिये अंतरिम उपाय कराने के लिये सांगठनिक स्तर पर पहलकदमियां करनी चाहिए जो रोजगार के अभाव में भीषण आर्थिक मुसीबतें झेल रहे हैं। जिन लोगों को रोजगार उपलब्ध नहीं कराया जा सकता उन्हें तत्काल प्रभाव से बेरोजगारी राहत मिले। इसके लिये कानून बनाने की मांग को पूरा कराने के उद्देश्य मे जनमत तैयार करना चाहिए। काम के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में संविधान में शामिल किया जाए, इस मांग को लोकप्रिय बनाने के लिये हमें सभी आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

हम पहले ही तीन अत्यंत महत्वपूर्ण बिन्दुओं का उल्लेख कर चुके हैं) (1) देश में बेरोजगारों की 60 प्रतिशत संख्या का संबंध कृषि क्षेत्र से है, (2) आर्थिक ठहराव की स्थिति होने के कारण यह संख्या कम होकर लगभग 57 प्रतिशत रह गई है और

(3) लगभग 75 प्रतिशत बेरोजगार देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। यह स्थिति आमूल भूमि सुधारों की हमारी मांग को मजबूत बनाती है। सफल भूमि सुधार ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बेरोजगारों को रोजगार उपलब्ध करा सकते हैं, इसके फलस्वरूप रोजगार के और अधिक अवसर सुलभ कराए जा सकेंगे, लोगों की क्रय अथवा खरीदारी करने की शक्ति बढ़ सकती है और इस प्रकार बाजार की निश्चलता अथवा ठहराव और उससे जुड़ी अनेक दूसरी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

वर्तमान संदर्भ में बेरोजगारी की समस्या केवल मात्र बेरोजगार नौजवान और छात्रों की ही समस्या नहीं रही जैसा कि और विशेष रूप से वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय क्रांति का युग शुरू होने से पहले तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं के वर्तमान चरण का संकट गहरा होने और साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण की नीतियां शुरू होने पर इस समस्या को देखा और समझा जाता था। वर्तमान में कामबंदियों, तालाबंदियों, जबरी छुट्टियों अर्थात ले-आफ, पुनर्गठन, विलीनीकरण एवं अधिग्रहणों, औद्योगिक इकाईयों एवं सरकारी विभागों में श्रम शक्ति का आकार घटाने जैसी कार्रवाईयां करके लाखों श्रमिकों को काम से निकाला जा रहा है और ये लाखों श्रमिक रोजगार की तलाश में दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। बेरोजगारों की बढ़ती या दूसरे शब्दों में बढ़ाई जा रही संख्या बेरोजगारी की समस्या को और अधिक भयानक बनाने में अपना योगदान दे रही है।

श्रमिक संघों की पहलकदमी

बेरोजगारी की समस्या को एक प्राथमिक कार्य के रूप में हाथ में लेना हमारे श्रमिक आंदोलन के लिये एक बहुत ही जरूरी तथा महत्वपूर्ण कार्य है। कामरेड बी टी रणदिवे ने वर्षों पूर्व लिखा था, ''सार्वजनिक क्षेत्र को भंग करने और अंधाधुंध निजीकरण करने और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भारत के बाजारों में दाखिल होने के लिये उत्साहित किये जाने की नीतियों एवं कार्रवाईयों का पूरी शक्ति के साथ विरोध किया जाना चाहिए और यह रोजगार की स्थिति के लिये एक भयानक खतरा है। इन घटनाओं ने श्रमिक आंदोलन के लिये एक चुनौतीपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी है, यदि हम रोजगारशुदा लोगों के रोजगार को बचाना चाहते हैं तो हमें इस चुनौती को स्वीकार करना ही होगा।'' वर्तमान स्थिति उससे कहीं अधिक खराब और चौंका देने वाली है जब कामरेड बी टी आर ने उपरोक्त पंक्तियां लिखी थीं। जब हालत इस कदर बिगड़ चुके हों तो श्रमिक आंदोलन को उचित पहलकदमी करनी ही होगी, उसे बेरोजगारी में तेज गति से हो रही वृद्धि को रोकने के लिये अपनी पूरी शक्ति के साथ लगातार एक संयुक्त जनवादी आंदोलन चलाना होगा।

एक ऐसे समय में जब बेरोजागरी की समस्या सामाजिक विस्फोट के कगार पर पहुंच चुकी हो और उसने हमारे देश में समाज की सभी श्रेणियों को अपनी चपेट में

ले लिया हो, वे रोजगार पर लगे लोग हों या बेरोजगार, शहरों में रहने वाले हों या ग्रामीण क्षेत्रों में, पुरुष हों अथवा महिलाएं। श्रमिक, किसान, छात्र तथा नौजवान श्रमिक वर्ग को चाहिए कि वह इसे गंभीरता से ले और रोजगार विहीन विकास की मुद्रा कोष, विश्व बैंक द्वारा प्रस्तावित नीति के खिलाफ एक राष्ट्रव्यापी संयुक्त जन आंदोलन चलाने की दिशा में पहलकदमी करे। इस प्रकार की पहलकदमी किये जाने के फलस्वरूप ही श्रमिक वर्ग तथा जनवादी आंदोलन में एक जीवंत संपर्क स्थापित हो सकेगा। श्रमिक संघों पर आरोप लगाया जाता है कि वे अर्थवाद का शिकार हो गए हैं, यदि हमारी ओर से इस प्रकार की पहलकदमी की जाती है तो इस आरोप को पूरी शक्ति के साथ झुठलाया जा सकेगा।

बेरोजगारी लोगों की जिस श्रेणी पर अपना सबसे अधिक दुष्प्रभाव डालती है, उसमें राष्ट्रीय घटनाओं को प्रभावित करने की जबरदस्त क्षमतायें हैं। दूसरे शब्दों में यह उसे प्रभावित करने वाला एकमात्र मुद्दा है। श्रमिक आंदोलन को यह बात समझनी ही होगी। यहीं पर बस नहीं, यह समस्या देश की जनसंख्या के एक विशाल बहुमत पर अपना विनाशकारी दुष्प्रभाव डालती है। इसलिये बेरोजगारी की समस्या एक ऐसा बिंदु है जिसे आधार बना कर हम प्रगतिशील, जनवादी तथा दलित लोगों की सभी श्रेणियों को एकजुट कर सकते हैं।

क्योंकि इस बुराई की जड़ पूंजीवाद और साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण का उसका वर्तमान चरण इस समस्या को बद से बदतर बनाने वाला एक प्रमुख कारक है इसलिये श्रमिक वर्ग द्वारा की गई पहलकदमी से चलाया गया एक सफल जन आंदोलन ही पूंजीवादी समाज व्यवस्था को जोरदार चुनौती दे सकता है, वही इस सामाजिक बुराई को दूर करने के लिये आगे आ सकता है। इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र के तत्कालीन प्रमुख महासचिव बुतरस घाली के वक्तव्य का उल्लेख करना उचित होगा। ''यदि आप बेरोजगारी, सामाजिक सौहार्द्र के समाप्त होने और भूमण्डलीय समस्याओं का कोई समाधान ढूंढ नहीं सकते तो आप निश्चित रूप से नयी-नयी क्रांतियां होते देखेंगे और विश्व व्यवस्था भयानक सीमा तक बिगड़ जाएगी।''

सी आइ टी यू ने दूसरे औद्योगिक महासंघों के सहयोग से अप्रैल 1990 में दुर्गापुर में काम के अधिकार पर एक सम्मेलन का आयोजन किया था, उस सम्मेलन ने देश में संपूर्ण श्रमिक आंदोलन के भीतर एक जबरदस्त उत्साह एवं जोश का संचार किया था। दुर्गापुर सम्मेलन की सफलता ने दूसरे केन्द्रीय श्रमिक संगठनों का ध्यान भी इस ओर खींचा था। वास्तव में उसके पश्चात नयी दिल्ली में एक और सम्मेलन का आयोजन किया गया था, उस सम्मेलन में दूसरे केन्द्रीय श्रमिक संगठनों ने भी भाग लिया था। यद्यपि हम विभिन्न कारणों के चलते इस पहलकदमी को और आगे नहीं बढ़ा पाए थे। फिर भी बेरोजगारी की समस्या आज जितनी विस्फोटक हो चुकी है और इसके कारण स्थिति इतना भयानक रूप ले चुकी है कि श्रमिक संघों के लिये

इस मामले में नये सिरे से पहलकदमी करना आवश्यक हो गया है।

दुर्गापुर सम्मेलन में तीन दिन की बहस के पश्चात जो दस्तावेज पारित किया गया था उसमें बेरोजगारी की समस्या का बड़े विस्तार में विश्लेषण एवं उल्लेख किया गया था और पता लगाया गया था कि कौन से कारक इस समस्या को विकराल बनाते हैं। उस सम्मेलन में जो निष्कर्ष निकाले गए थे उनमें से अधिकांश आज की परिस्थितियों में भी प्रासंगिक हैं। इसलिये दुर्गापुर सम्मेलन का दस्तावेज आगामी पहलकदमी के लिये, जिसकी कल्पना की जा रही है, तत्काल रूप में एक आधार उपलब्ध करा सकता है।

सी आइ टी यू के 11वें महाधिवेशन में बेरोजगारी की समस्या पर गठित कमीशन का यह दस्तावेज लाया जा रहा है। हमें और अधिक विस्तार में जाकर इस विकट समस्या पर विचार करना चाहिए। इसके लिये साथियों की समझदारी तथा अनुभवों को आधार बना कर यदि हम वस्तुपरक वास्तविकता पर अपना ध्यान केन्द्रित करें तो अच्छा रहेगा। इसके लिये कुछ प्रमुख बिन्दुओं का पता लगाया गया है। बहस की प्रक्रिया इन्हीं बिन्दुओं के आधार पर चलाई जानी चाहिए।

1- बेरोजगारी विरोधी अभियान के विभिन्न चरणों को चलाने के लिये हमारे संगठन के विभिन्न स्तरों अर्थात इकाई, जिला, अंचल, राज्य तथा राष्ट्रीय, पर उठाए जाने वाले व्यावहारिक कदम।

2- हमारी पहलकदमी कैसी होगी और उसका स्वरूप क्या होगा इसका निश्चय करने के बाद हमें वर्गीय एवं जनसंगठनों के साथ मिल कर संयुक्त पहलकदमियां करनी होंगी।

3- इसके लिये हमें विशेष रूप से स्वयं पहलकदमी करनी होगी और हमारा अंतिम लक्ष्य सभी प्रमुख केन्द्रीय श्रमिक संगठनों को इस अभियान में शामिल करना होगा और आगे चल कर हमारी यही पहलकदमी दूसरे जन संगठनों को भी बेरोजगारी के विशेष मुद्दे पर इस संयुक्त आंदोलन में खींच लाने के लिये एक प्रेरक शक्ति का काम करेगी।

4- इस आंदोलन एवं प्रचार अभियान को सबसे निचले स्तर पर ले जाने और धीरे-धीरे इस आंदोलन को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है, इसकी चरम परिणति लोगों के एक जबरदस्त राष्ट्रव्यापी आंदोलन के रूप में हो।

बी टी रणदिवे

19 दिसंबर 1904 - 6अप्रैल 1990

सी आई टी यू के संस्थापक अध्यक्ष भालचंद्र त्र्यंबक रणदिवे, जिन्हें उनके सहयोगी बी टी आर के नाम से जानते थे, सिर्फ देश के ट्रेड यूनियन आंदोलन के सबसे बड़े व सर्वाधिक स्पष्ट समझदारी वाले नेता ही नहीं थे- सामाजिक परिवर्तन के लिये जारी क्रांतिकारी आंदोलन के भी शीर्ष नेता थे।

''वे एक ओर ट्रेड यूनियन आंदोलन के शुरूआती दौर व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आंदोलन तथा दूसरी ओर समाजवादी राज्य की स्थापना हेतु पूंजीवाद व साम्राज्यवाद के विरुद्ध मजदूर वर्ग के मौजूदा वर्ग संघर्ष की एतिहासिक कड़ी थे। वे एक महान चिंतक, बुद्धिजीवी, लेखक, वक्ता, मैदानी योद्धा एवं मार्क्सवाद लेनिनवाद के सिद्धांतों के प्रति समर्पित अतुलनीय नेता थे...''

(दि वर्किंग क्लासः 1990)

''जो नौजवान साथी पिछली कुछ वर्षों में आंदोलन में शामिल हुए हैं, उन्हें क्रांतिकारी संघर्ष को जारी रखने के लिये बी टी आर के जीवन, काम और शिक्षाओं से प्रेरणा लेनी चाहिए।''

(ई एम एस नंबूदिरिपाद)

''बी टी आर ने, शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध अथक एवं निरंतर आर्थिक संघर्षों की हिमायत की साथ ही मजदूर वर्ग के राजनीतिकरण की लड़ाई छेड़ी ताकि वह अर्थवाद के विरुद्ध खड़ा हो सके। उन्होंने किसान आंदोलनों की मदद करने तथा मजदूर किसान एकता का निर्माण करने के ट्रेड यूनियनों के कर्तव्य की बार-बार याद दिलाई। उन्होंने रोजगार शुदा मजदूरों से बेरोजगार मजदूरों के लिये संघर्ष करने तथा उनके साथ अपना साझा आंदोलन विकसित करने को भी कहा।''

(ज्योति बसु, 1990)

''वे सिर्फ भारत के ही सबसे बड़े मार्क्सवादी नहीं थे, मैं उन्हें उनकी पीढ़ी के विश्व के कुछ महान कम्युनिस्ट नेताओं में से एक मानता हूं।''

(एम. बासवपुन्नैया)